Classified Contents

Prose (गद्य)

Poetry (पद्य)

1. Imaginative —

१—याचा, भक्तकी भावना, प्रेम प्रवाह, संसार-सार, मुरझाया हुआ फूल ।

2. Descriptive and natural Scenes —

२—कर्मवीर ।

3. Narrative:—

३—द्रौपदी वचन-बाणावली, अंगद और रावण, भ्रातृ-प्रेम, वसिष्ठ और भरतका संवाद, सज्जन-संकीर्तन, वीर शिवाजी ।

4. Patriotic —

४—मातृ-भूमि, भारत वन्दना, भूषण कविके पद्य ।

5. Didactic —

५—ज्ञान-स्रोत, विपद्-स्वागत, गिरिधरकी कुण्डलिया, सूरदासके पद, रहीमके दोहे, कबीरके दोहे, छवि ।

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ

——

उपक्रम

यों तो ऍंग्लोवर्नाक्यूलर स्कूलोंके लिये सम्प्रति बहुतसे हिन्दी-संग्रह उपलब्ध हैं, फिर भी हिन्दी-भाषाके विस्तृततम क्षेत्रके विचारसे प्रस्तुत संग्रहोंकी संख्या पर्य्याप्त नहीं प्रतीत होती है ।

संग्रहाभावके सिवा प्रस्तुत संग्रहोंमें कितने ऐसे भी हैं जिनसे विद्यार्थि-संसारके मस्तिष्क-विकास और योग्यता-साधनकी यथेष्ट संभावना नहीं की जाती। ऐसे ही अगम्य न्यूनताओंके विमर्शने छात्रोपयोगी संकलन करनेके लिये इस कार्य-क्षेत्रमें मुझे बरबस अग्रसर किया। पर क्रूर पारिवारिक-बाधा-जाल मुझे सतत इस उद्देश्यसे पीछे खींच हतोत्साह करता आ रहा था। किन्तु आरत-हरण जगदीशकी असीम दया और हिन्दी पुस्तक एजेन्सीके मालिक सेठ श्री बैजनाथजी केडियाकी उदारताने सौभाग्यवश आज मेरे इस विचारकी पूर्ति कर दी।

इस पुस्तकके पाठ्य-विषयोंके संकलनमें केवल ऐसे ही विषय रखे गये हैं, जो कोमल हृदय बालकोंके चरित्र निर्माण, मनोविकास, शारीरिक सङ्गठन तथा नैतिक उन्नतिमें पर्य्याप्त सहायता दें। क्योंकि छात्र ही देशके उन्नति-प्रासादकी अटल नींव हैं, इन्हींपर देशके भावी उत्थानपतनका गुरुतर भार है।

इस पुस्तक संग्रहमें हिन्दीके सुप्रसिद्ध, अभ्यस्त-हस्त गद्य तथा पद्यके लेखकोंके विभिन्न-विषयोंपर लेख दिये गये हैं। उन लेखोंमें जहां तहां आवश्यकतानुसार उचित परिवर्त्तन तथा संशोधन भी किया है और जहां लेख पर्य्याप्तसे अधिक देखे गये हैं उन्हें वहां उचित

मात्रामें सक्षिप्त भी कर दिया है। पद्योंके निर्वाचनमें यह ध्यान निरन्तर रखा गया है कि विद्यार्थिगण प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी प्रख्यात कवियोंकी रचनाओंसे परिचित हो जाय और उन्हें हिन्दी-साहित्यका भी पर्याप्त ज्ञान हो।

पुस्तकके अन्तमे हरएक पाठके कठिन शब्दोंकी एक छोटीसी शब्दार्थ-तालिका भी दी गई है, ताकि छात्रोंको गद्यो तथा पद्योंके पठन-पाठनमें लेशमात्र भी कठिनाई न रहे। प्रत्येक पाठके अन्तमें गद्य तथा पद्य दोनोंके अभ्यास भी दिये गये हैं, जिनसे छात्रोको पाठ-विशेषपर किये जानेवाले सभव सभी प्रश्नोंका ज्ञान सम्यक् रीतिसे हो जाय। साराश यह कि पुस्तकको छात्रोपयोगी बनानेकी यथा-साध्य चेष्टा की गई है, किन्तु इस उद्देश्यमे मुझे कहाँतक सफलता मिली है यह साहित्य-रसिक, विज्ञ-शिक्षक और पाठक ही जान सकते हैं। यदि इस सग्रहसे छात्रोंका कुछ भी उपकार हुआ तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूँगा।

इस पुस्तकके सकलन करनेमे मैंने विभिन्न लेखकोंके लेखों, पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओंसे यथेष्ट सहायता ली है। एतदर्थ मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हू तथा उन मित्रोंको भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता जिनकी गंभीर सम्मतिने इस पुस्तकके तैयार करनेमें मुझे यथेष्ट सहायता दी है।

कलकत्ता, पौष संक्रान्ति
संवत् १९९१ } भुवनेश्वर मिश्र

२—जातीय-साहित्य

[ले०—रायसाहब श्यामसुन्दर दास बी० ए०]

(हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारसके प्रोफेसर रायसाहबके नामसे हिन्दी-संसारका कौन व्यक्ति परिचित नहीं होगा। "काशी-नागरी-प्रचारिणी" जैसी सुप्रसिद्ध साहित्यिक-सम्थाको स्थापित करनेका श्रेय आपको ही प्राप्त है। आप हिन्दीके एक उच्च कोटिके लेखक हैं। आपके लिखे हुए ग्रन्थोंमें "साहित्यालोचन", "भाषाविज्ञान", "हिन्दी भाषा और साहित्य" आदि ग्रन्थ हिन्दी-साहित्यमें अमर रहेंगे। आपकी प्रवीण लेखन-शैलीने साहित्यके गहन विषयोंका विवेचन करके हिन्दी साहित्य संसारमें युगान्तर उपस्थित कर दिया है। आपने साहित्य इतिहासके गूढतत्वोंके निदर्शनसे हिन्दी साहित्यको विभूषित किया है। आपने कितने ही अमूल्य ग्रन्थोंका सपादन अद्वितीय योग्यताके साथ किया है। आप प्रारम्भसे ही हिन्दीकी सेवा सच्ची लगन और तत्परतासे करते आ रहे हैं। हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके सभापतिका उच्च पद आपके द्वारा सुशोभित हो चुका है।)

पहले हमें यह जानना चाहिये कि जब हम किसी देशके जातीय साहित्यके इतिहासका उल्लेख करते हैं, तब उससे हमारा तात्पर्य क्या होता है। अर्थात् जब हम भारतीय आर्य-जातिका साहित्य, यूनानी साहित्य, फ्रांसीसी साहित्य या अङ्गरेजी साहित्य आदि वाक्यांशोंका प्रयोग करते हैं, तब हम किस बातको व्यञ्जित करना चाहते है। कुछ लोग कहेंगे कि इन वाक्यांशोंका तात्पर्य यही है कि उन-उन भाषाओं-मे कौन-कौनसे लेखक हुए, वे कब-कब हुए, उन्होंने कौन-कौनसे ग्रन्थ लिखे, उन ग्रन्थोंके गुण-दोष क्या हैं और उनके साहित्यिक भावोंमें क्या-क्या परिवर्तन हुए। यह ठीक है, पर जातीय साहित्यमें इन बातोंके अतिरिक्त और भी कुछ होता है। जातीय साहित्य केवल उन

पुस्तकोंका समूह नहीं कहलाता जो किसी भाषा या किसी देशमें विद्यमान हों। जातीय साहित्य जाति विशेषके मस्तिष्ककी उपज और उसकी प्रकृतिके उन्नतिशील तथा क्रमागत अभिव्यञ्जनका फल है। सम्भव है कि कोई लेखक जातीय आदर्शसे दूर जा पडा हो और उसकी यह विभिन्नता उसकी प्रकृतिकी विशेषतासे उत्पन्न हुई हो, परन्तु फिर भी उसकी प्रतिभामे स्वाभाविक जातीय भावका कुछ न कुछ अंश वर्तमान रहेगा ही। उसे वह सर्वथा छोड़ नहीं सकता।

यदि स्वाभाविक जातीय भाव किसी कालमे वर्तमान कुछ ही चुने हुए स्वनामधन्य लेखकोंमें पाया जायगा, तो हम कह सकेंगे कि उस कालके जातीय साहित्यकी यही विशेषता थी। जब हम कहते है कि अमुक कालके भारतीय आर्यों, यूनानियों या फ्रासीसियोंका जातीय भाव ऐसा था, तब हमारा यह तात्पर्य नहीं होता कि उस कालके सभी भारतीयों, यूनानियो या फ्रासीसियोके विचार या मनोवेग एकसे थे। उससे हमारा यही तात्पर्य होता है कि व्यक्तिगत विभिन्नताको छोड़कर जो साधारण भाव किसी कालमे अधिकतासे वर्तमान होते है, वे ही भाव जातीय प्रकृतिके व्यंजक या बोधक होते है, और उन्हींको जातीय भाव कहते है। चाहे उन्हें कोई दोप समझे या गुण। उन्हीं जातीय भावोंका विवेचनापूर्वक विचार करके हम इस सिद्धातपर पहुंचते हैं कि अमुक कालमे अमुक जातिके जातीय भाव ऐसे थे। उन्हींके आधारपर हम किसी जातिकी शक्ति, उसकी त्रुटि और उसकी मानसिक तथा नैतिक स्थितिका ज्ञान प्राप्त करते हैं, तथा इस बातका अनुभव करते है कि उस जातिने संसारकी मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नतिमे कहांतक योग दिया।

मध्यकाल अर्थात् सन् ईसवीकी दसवींसे चौदहवीं शताब्दियों-के बीच यूरोपमें किसी नवयुवककी शिक्षा तवतक पूर्ण नहीं समझी जाती थी जवतक वह यूरोपके सभी मुख्य-मुख्य देशोंमें पर्य्यटन न कर आता था। इसका उद्देश्य यही था कि वह अन्य देशोंके निवासियों, उनकी भाषाओं, उनके रीति-रिवाज तथा उनकी सार्वजनिक संस्थाओं आदिका ज्ञान प्राप्त कर ले, जिसमे पारस्परिक तुलनासे वह अपने जातीय गुण दोषोंका ज्ञान प्राप्त कर सके और अपने शील-स्वभाव तथा व्यवहारको परिमार्जित और सुन्दर वना सके।

साहित्यका अध्ययन भी एक प्रकारका पर्यटन या देश-दर्शन ही है। उसके द्वारा हम अन्य देशों और जातियोंके मानसिक, तथा आध्यात्मिक जीवनसे परिचय प्राप्त करते और उनसे निकटस्थ सम्वन्ध स्थापित करके उनके उपार्जित ज्ञान-भाण्डारके रसास्वादनमे समर्थ होते है। देश-दर्शनके लिये की गई साधारण यात्रा और साहित्यिक-यात्रामे वड़ा भेद है। साधारण यात्रा तो हम किसी निर्दिष्ट कालमें ही कर सकते है पर साहित्यिक-यात्राके लिये कालका कोई वन्धन नहीं। यात्रा हम चाहे जिस कालमे कर सकते है। तात्पर्य यह कि हम किसी भी जातिकी, किसी भी कालकी विद्वन्मंडलीसे, जव चाहे, परिचय प्राप्त कर सकते है। इसके लिये किसी प्रकारका अवरोध या वन्धन नहीं है।

इस प्रकार दूसरी जातियोंके साहित्यके इतिहासका अध्ययन करके हम उस जातिकी प्रतिभा, उसकी प्रवृत्ति, उसकी उन्नति आदिके क्रमिक विकासका इतिहास जान सकते हैं। इस दशामें साहित्य, इतिहासका व्याख्याता और सहायक हो जाता है। इतिहास हमें यह वतलाता है कि किसी जातिने किस प्रकार

अपनी सांसारिक सभ्यताको बढ़ाया और वह क्या क्या करनेमें समर्थ हुई। साहित्य बताता है कि जाति विशेषकी आन्तरिक वासनाएँ, भावनाएँ, मनोवृत्तियाँ तथा कल्पनाएँ क्या थीं, उनमें क्रमशः कैसे परिवर्तन हुआ, सासारिक-जीवन-के उतार चढ़ावका उनपर कैसा प्रभाव पड़ा और उस प्रभाव-ने उस जातिके मनोविकारों और मानसिक तथा आध्यात्मिक जीवनको नये साचेमें कैसे ढाला। साहित्य हीसे हमे जातियोंके आध्यात्मिक, मानसिक और नैतिक विकास किंवा उन्नतिका ठीक-ठीक पता मिलता है।

अभ्यास

(१) साहित्यकी शुद्ध परिभाषा बताओ। क्या ससारकी सभी पुस्तकें साहित्य कही जा सकती हैं?

(२) साधारण साहित्य ओर जातीय साहित्यमें क्या अन्तर है?

(३) हमारे जीवनमें जातीय साहित्यकी क्या उपयोगिता है?

(४) जातीय साहित्य ही एक जाति विशेषका कैसे सर्वोत्तम इतिहास-गाथा है?

३—कर्मवीर

[ले०—पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय]

(आपका जन्म चै० कृ० ३ स० १९२२ में हुआ। आप बदायू के रहने-वाले थे किंतु कई पीढियो से आजकल आजमगढ जिलेमें रहते हैं। उपा-ध्यायजीका हिन्दीके प्रति अगाध प्रेम है। आप अपने जीवनके प्रारम्भ-से ही हिंदीकी सेवा करते आ रहे हैं। आप सरकारी पदपर रहते हुए भी बराबर साहित्य-सेवामें रत रहे हैं। आप जैसे प्रवीण और कुशल गद्य लेखक हैं, वैसेही हस्तसिद्ध सुकवि भी। आप सरलतम और कठिन-

तम भाषा लिखनेमें अति दक्ष हैं। आपने अपने चमत्कारसे हिन्दी-काव्य-ससारमें युगान्तर उपस्थित कर दिया है। आपका 'प्रियप्रवास' अमर महाकाव्य है। आपका वर्तमान समयके खड़ी बोलीके महाकवि हैं।)

देखकर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भागके दुख भोग पछताते नहीं।
काम कितना ही कठिन हो किन्तु उकताते नहीं।
भीड़में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं॥
हो गये यक आनमे उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब कालमे वे ही मिले फूले फले॥१॥
आज करना है जिसे करते उसे है आज ही।
सोचते कहते है जो कुछ कर दिखाते है वही॥
मानते जो की है सुनते है सदा सबकी कही।
जो मदद करते है अपनी इस जगतमें आप ही॥
भूलकर वे दूसरोंका मुंह कभी तकते नहीं।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं॥२॥
जो कभी अपने समयको यों बिताते है नहीं।
काम करने की जगह बातें बनाते है नहीं॥
आजकल करते हुए जो दिन गंवाते है नहीं।
यत्न करनेमें कभी जो जी चुराते है नहीं॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये।
वे नमूना आप बन जाते है औरोंके लिये॥३॥
व्योमको छूते हुए दुर्गम पहाड़ोंके शिखर।
वे घने जंगल जहा रहता है तम आठों पहर॥
गर्जते जल-राशिकी उठती हुई ऊँची लहर।
आगकी भयदायिनी फैली दिशाओंमे लवर॥

ये कँपा सकती कभी जिसके कलेजेको नहीं।
भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥४॥
चिलचिलाती धूपको जो चादनी देवे बना।
काम पड़ने पर करें जो शेरका भी सामना॥
जो कि हँस हँसके चबा लेते है लोहेका चना।
'है कठिन कुछ भी नहीं' जिनके है जीमे यह ठना॥
कोस कितने ही चले पर वे कभी थकते नही।
कौनसी है गांठ जिसको खोल वे सकते नही॥५॥
कामको आरम्भ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूलकर मुँह मोड़ते॥
जो गगनके फूल बातोंसे वृथा नहिं तोड़ते।
सम्पदा मनसे करोड़ोकी नहीं जो जोडते॥
बन गया हीरा उन्हींके हाथसे है कारबन।
कांचको करके दिखा देते है वे उज्ज्वल रतन॥६॥
पर्वतोंको काटकर सड़के बना देते है वे।
सैकड़ों मरुभूमिमे नदियां बहा देते है वे॥
गर्भमे जल-राशिके बेड़ा चला देते हैं वे॥
जंगलोंमे भी महा-मंगल रचा देते है वे॥
भेद नभ-तलका उन्होंने है बहुत बतला दिया।
है उन्होंने ही निकाली तारकी सारी क्रिया॥७॥
कार्य थलको वे कभी नहिं पूछते "वह है कहां"।
कर दिखाते है असम्भवको वही सम्भव यहां॥
उलझनें आकर उन्हें पडती है जितनी ही जहां।
वे दिखाते है नया उत्साह उतना ही वहां॥
ढाल देते है विरोधी सैकडों ही अड़चनें।
वे जगहसे काम अपना ठीक करके ही टलें॥ ८॥

जो रुकावट डालकर होवे कोई पर्वत खड़ा।
तो उसे देते है अपनी युक्तियोंसे वे उड़ा॥
बीचमें पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा।
तो बना देंगे उसे वे क्षुद्र पानीका घड़ा॥
बन खँगालेंगे करेंगे व्योममें बाजीगरी।
कुछ अजब धुन काम करनेकी जो उनमें है भरी॥६॥
सब तरहसे आज जितने देश हैं फूले फले।
बुद्धि, विद्या, धन, विभवके है जहाँ डेरे डले॥
वे बनानेसे उन्हींके बन गये इतने भले।
वे सभी है हाथसे ऐसे सपूतोंके पले॥
लोग जब ऐसे समय, पाकर जनम लेंगे कभी।
देशकी औ जातिकी होगी भलाई भी तभी॥१०॥

अभ्यास

[१] कर्मवीरसे कैसे मनुष्यका बोध होता है? अपनी सरल भाषामें बताओ।

[२] कर्मवीर मनुष्योंके क्या क्या गुण होते हैं? समझाओ।

[३] क्या कर्मवीरके लिये इस ससारमें कोई ऐसा भी काम है जो असाध्य है? यदि नहीं तो कैसे?

[४] निम्नांकित शब्दोंके अर्थ बताओः—
मरुभूमि, मुंह मोड़ना, मुँह ताकना, जी चुराना, गाठ खोलना।

[५] कर्मवीर मनुष्योंके गुणो के विरुद्ध किनके और कैसे गुण होते हैं?

* ———— *

४—सम्भाषणमें शिष्टाचार

[ले०—कामताप्रसाद गुरु]

(गुरुजीका जन्म संवत् १९३२ वि०, सागर, मध्यप्रदेशमें हुआ था। आपके पूर्वज अपनी कार्य-कुशलताके कारण दागी (राजपूत) रानियोंके गुरु रहे थे। इसी कारण 'गुरु' पदवी अबतक चली आ रही है। आप एन्ट्रेंस पास करके ही सागर हाईस्कूलमें शिक्षक हो गये। आजकल आप नार्मल स्कूल जबलपुरमें शिक्षक हैं। आप हिन्दीके एक उत्तम लेखक हैं। आपकी भाषा सदा व्याकरणसम्मत और सरल बोधगम्य होती है। कविताएं ललित और भावपूर्ण होती हैं। आपने हिन्दीका एक बृहत् व्याकरण और अन्य अनेक पुस्तकें लिखी हैं।)

मनुष्यकी विद्या, बुद्धि और स्वभावका पता उसकी बातचीत-से लग जाता है, इसलिये उसे अपने विचार प्रकट करनेके लिये बातचीतमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। सम्भाषणमें साव-धानीकी आवश्यकता इसलिये भी है कि बहुधा बात ही बातमे कर्प बढ़ आता है। यथार्थमे मनुष्यकी बातचीत ही उसके लिये कार्योंकी सफलता अथवा असफलताका कारण होती है। किसी कविने कहा है 'कहै कृपाराम सब सीखिबो निकाम एक बोलिबो न सीखो सब सीखो गयो धूलमे।' जिसकी बातचीतमें सभ्यता वा शिष्टाचारका अभाव रहता है उससे लोग बात करना नहीं चाहते।

सम्भाषण करते समय श्रोताकी मर्यादाके अनुरूप 'तुम' 'आप' अथवा 'श्रीमान्' का उपयोग करना चाहिये। इनमे 'आप' शब्द इतना व्यापक है कि वह 'तुम' और 'श्रीमान्' का भी स्थान ग्रहण कर सकता है। 'तुम' का उपयोग अत्यन्त साधारण स्थितिके लोगोंके लिये या अधिक घनिष्ठ परिचयवाले समवय-

स्कके लिये और श्रीमान्‌का उपयोग अत्यन्त प्रतिष्ठित महानुभावोंके लिये किया जाय।

बहुत ही छोटे लड़कोंको छोड़कर और किसीके लिये 'तू' का उपयोग करना उचित नहीं। 'किसीके प्रश्नका उत्तर देनेमे 'हा' या 'नहीं' के लिये केवल सिर हिलाना असभ्यता है। उसके बदले 'जी हा या 'जी नहीं', कहनेकी बड़ी आवश्यकता है। बातचीत इस प्रकार रुक-रुक कर न की जाय कि जिससे श्रोताको उकताहट मालूम पड़ने लगे। बातचीत करते समय इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि बोलनेवाला बहुत देरतक अपनी ही बात न सुनाता रहे, जिससे दूसरोंको बोलनेका अवसर न मिले और वे बोलनेवालेकी बकबकसे ऊब जायं। बातचीत बहुधा संवादके रूपमे होनी चाहिये जिससे श्रोता और वक्ता-दोनोंका अनुराग सम्भाषणमें बना रहे।

सभ्य वार्तालापमें इस बातका ध्यान रखा जाता है कि किसीके जीको दुखानेवाली कोई बात न कही जाय। सम्भाषण-को, जहातक हो सके, कटाक्ष आक्षेप, व्यङ्ग, उपालम्भ और अश्लीलतासे मुक्त रखना चाहिये।

अधिकारकी अहम्मन्यतामें भी, किसीके लिये कटु शब्दका प्रयोग करना अपनेको असभ्य सिद्ध करना है। किसी नये व्यक्तिके विषयमे परिचय प्राप्त करनेके लिये बातचीतमे उत्सु-कता न प्रकट की जाय और जबतक बड़ी आवश्यकता न हो, किसीकी जाति, वेतन, वंशावली, वय आदि न पूछा जाय। किसीसे कुछ पूछते समय प्रश्नोंकी झड़ी लगाना उचित नहीं। यदि कोई सज्जन आपका प्रश्न सुनकर भी उसका उत्तर न दें तो उसके लिये उनसे अधिक आग्रह न करना चाहिये। यदि ऐसा जान पड़े कि वह उत्तर देना भूल गये है तो अवश्य ही नम्रता

पूर्वक दूसरी वार उनसे प्रश्न किया जाय।

वातचीतमें आत्म-प्रशंसाको यथासम्भव दूर रखना चाहिए, साथ ही वातचीतका ढङ्ग भी ऐसा न हो कि श्रोताको उसमे अपने अपमानकी झलक दिखाई दे। वातचीतमें विनोद बहुत ही आनन्द लाता है, परन्तु सदैव हँसी ठट्ठा करनेकी टेव वक्ता और श्रोता दोनोंके लिये हानिकारक है।

यदि कोई दो-चार सज्जन इकट्ठे किसी विषयपर वातचीत कर रहे हों तो अचानक उनके वीचमे जाना अथवा उनकी वाते सुनना अशिष्टता है। ऐसे अवसरपर लोगोंके पास जाकर विना कुछ पूछे ही वातचीत करने लगना अनुचित है, कभी-कभी किसी मनुष्यको चुपचाप देखकर लोग उससे कुछ कहनेका आग्रह करते है। ऐसी अवस्थामे मनुष्यका कर्त्तव्य है कि वह कोई मनोरञ्जक वात या विषय छेड़कर उनकी इच्छा पूर्ति करे।

किसीकी असम्भव वातें सुनकर भी उसकी हाँमे हाँ मिलाना चापलूसी है और न्याय-संगत वातें सुनकर भी उनका खण्डन करना दुराग्रह है। लोगोंको इन दोषोंसे वचना चाहिए। यद्यपि वार्तालापमे दूसरेके मतका समर्थन करनेसे, अथवा उसकी प्रशंसामे दो चार शब्द कहनेसे चापलूसीका कुछ आभास रहता है, तथापि इतनी चापलूसीके विना सम्भाषण नीरस और अप्रिय हो जाता है।

इसी प्रकार अपने मतका समर्थन करने और दूसरेके मतका खण्डन करनेमे कुछ-न-कुछ दुराग्रह झलकता है, तो भी इतना दुराग्रह सभ्य और शिक्षित समाजमे क्षन्तव्य है। किसी अनुपस्थित सज्जनकी अकारण निन्दा करना शिष्टताके विरुद्ध है और परनिन्दकको सभ्य तथा शिक्षित लोग वहुधा

अनादरकी दृष्टिसे देखते है। विद्वानोंके समाजमें मतभेद होनेके अनेक कारण उपस्थित होते है, इसलिए जब किसीके मतको खंडन करनेका अवसर आवे तब बहुत ही नम्रतापूर्वक और क्षमा-प्रार्थना करके उस मतका खण्डन करना चाहिये, खण्डन भी ऐसी चतुराईसे किया जाय कि विरुद्ध मतवालेको बुरा न लगे। बातचीतमे क्रोधके आवेशको रोकना चाहिए और यदि यह न हो सके तो उस समय मौन धारण ही उचित है। कड़वे वचनोंका उत्तर व्यंगसे भी देना नीतिकी दृष्टिसे अनुचित नहीं है, तथापि शिष्टाचार उन्हें कमसे कम एक बार सहन करनेका परामर्श देता है।

यदि अपने किसी अनुपस्थित मित्र वा सम्बन्धीकी निन्दा की जा रही हो तो निन्दकको नम्रतापूर्वक इस कार्यसे विरत कर देना चाहिए और यदि इतनेपर भी अपनी बातका कोई प्रभाव निन्दकपर न पड़े तो किसी बहाने उसके पाससे उठकर चले आना उचित है। इससे उसे अपनी मूर्खता, तथा उसकी अप्रसन्नताका कुछ आभास हो जायगा। जो मनुष्य स्वयं अकारण दूसरोंकी निन्दा नहीं करता उसके सामने दूसरोंको भी ऐसी निन्दा करनेका साहस बहुधा नहीं होता।

किसी सभा, समाज या जमावमे अपने मित्र अथवा परिचित व्यक्तिसे ऐसी भाषाका कथवा ऐसे शब्दोंका उपयोग न करना चाहिये, जिन्हे दूसरे न समझ सकें, अथवा जो उन्हें विचित्र जान पड़ें, ऐसे अवसरपर किसी विशेष अथवा अपने ही धन्धे या नौकरीकी बातें करनेसे दूसरे लोगोंको अरुचि उत्पन्न हो सकती है। यदि किसी विशेष अथव गहन विषयपर बहुत समयतक सम्भाषण करनेकी आवश्यकता न हो तो थोड़े थोड़े समयके अन्तरपर विषयको बदल देना अनुचित न होगा।

अभ्यास

(१) अपनेसे बड़ोंके सम्मुख किस प्रकार बोलना चाहिये ?
(२) 'तू' और 'तुम' का प्रयोग हम किनके लिये कर सकते हैं ?
(३) अपने गुरुजनोंकी निन्दा सुननेमें दोष है। कैसे ?
(४) सम्भाषणमें शिष्टाचारके सभी चिह्नोंका संक्षेपमें वर्णन करो।
(५) बोलनेमें उदण्डता सर्वथा निन्दनीय है। समझाओ।

५—द्रौपदी-वचन-बाणावली

[ले०—आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी]

(द्विवेदीजीका जन्म जिला रायबरेलीके दौलतपुर ग्राममें वै० शुक्र ४ संवत् १९२१ में हुआ। द्विवेदीजी हिन्दी-साहित्यके महारथी हैं। द्विवेदीजीकीसी विद्वता, गद्य-पद्य लेखन-कुशलता, समालोचनामें निर्भीकता, हिन्दीके किसी भी लेखकमें अवतक नहीं है। ऐसा कोई विषय नहीं, ऐसा कोई शास्त्र नहीं, जहाँ हमारे पूज्यपाद द्विवेदीजीकी दृष्टि न गई हो। अर्थ शास्त्र, समाज-शास्त्र, काव्य, दर्शन कोई भी शास्त्र आपसे छूटा नहीं है। आपने जिस विषय पर लेखनी उठाई उसे अपनी असाधारण प्रतिभाके बलसे सुन्दर बना दिया। आप स्वयं कवि हैं तथा कविताके मर्मज्ञ पण्डित भी हैं। आप वृद्ध होनेपर भी अवतक हिन्दीकी वैसी ही अनुरागके साथ सेवा कर रहे हैं। आपके द्वारा लिखित, सम्पादित तथा अनुवादित ग्रन्थोंकी संख्या ३० के ऊपर है।)

धर्मराजसे, दुर्योधनकी, इस प्रकार सुन सिद्धि विशाल,
चिन्तन कर अपकार शत्रु कृत, कृष्णा कोप न सकी संभाल।
क्रोध और उद्योग बढ़ाने वाली, तब वह गिरा रसाल,
महीपालको सम्बोधन कर, बोली युक्ति युक्त तत्काल ॥ १ ॥

आप सदृश पण्डितके सम्मुख, निपट नीच नारीकी बात,
तिरस्कार कारक-सी होती है, हे नरपति कुल विख्यात।
वस्त्र हरण आदिक अति दु.सह दुःख तथापि आज इस काल,
बार बार प्रेरित करते है मुझे बोलनेको भूपाल ॥ २ ॥

तेरे ही वंशज महीपवर, सुर नायक सम तेज निधान,
जो धरती अखण्ड इस दिन तक, धारण किये रहे वलवान।
हा हा। वही मही निज करसे, तूने ऐसी फेंकी आज,
सिरसे हार फेंक देता है, जैसे महामत्त गजराज ॥ ३ ॥

कपटी कुटिल मनुष्योंसे जो जगमें कपट न करते है,
वे मतिमन्द मूढ़ नर निश्चय, पाप पराभव मरते है।
उनमे कर, प्रवेश फिर उनको, शठ यों मार गिराते है,
कवच हीन तनुसे ज्यों पैने, बाण प्राण ले जाते है ॥ ४ ॥

हे साधन सम्पन्न नराधिप। हे क्षत्रिय कुल अभिमानी।
कुलजा गुणगरिमा वंशवदा यह लक्ष्मी सब सुखखानी।
तुझे छोड कर अन्य कौन नृप, इसको दूर हटावेगा,
अपनी मनोरमा रमणी सम, रिपुसे हरण करावेगा ॥ ५ ॥

हे महीप ! मानी नर जिसको, महानिन्द्य बतलाते है,
उसी पन्थके आप पथिक है, नहीं परन्तु लजाते है।
कोपानल, क्यों नहीं आपको, भस्मीभूत बनाता है ?
सूखे शमी बृक्षको जैसे ज्वाला-जाल जलाता है ॥ ६ ॥

यथा समय जो कोप अनुग्रह, को प्रयोगमें लाते है,
स्वयं देहधारी सब उनसे वशीभूत हो जाते है।
क्रोधहीन नरकी रिपुतासे, कोई भय नहिं पाते है,
तथा मित्रतासे, वे उसको आदर भी न दिखाते है ॥ ७ ॥

चन्दन चर्चित गात भीम जो, रथहीपर चलता था तत्र,
धूल धूसरित वही विपिनमे, पैदल फिरता है सर्वत्र।

क्या तव मन इसपर भी पीड़ित, होता नहीं पाय संताप ?
सत्यशील बनकर अनर्थ यह हाय ! कर रहे है क्या आप ॥८॥

देवराज सम जिस अर्जुनने, उत्तर कुरु सब विजय किया,
करके हे नृप ! तुझे अकृत्रिम, अतुलित धनोपहार दिया,
तेरे लिये वही अब हा हा ! तरु के वल्कल लाता है,
इसे देखकर भी क्या तुझको, कुछ भी क्रोध न आता है ॥ ६ ॥

यहाँ महीतलपर सोनेसे, मृदुल गात हो गया कठोर,
वन-गज-तुल्य देख पड़ते है, जटा लटकती है सब ओर !
नकुल और सहदेव युग्मकी, ऐसी दुर्गति देख नरेश,
क्या तू शेष नहीं कर सकता, अब भी अपना धैर्य विशेष ॥१०॥

हे नृप ! तेरी मति-गति मेरी, नहीं समझमे आती है,
चित्त-वृत्ति भी किसी-किसीकी, अद्भुत देखी जाती है।
तेरी प्रबल आपदाओं का, चिन्तन करती हूं मैं जब,
मनस्तापसे फट जाता है, यह मेरा हृदयस्थल तब ॥ ११ ॥

मूल्यवान मंजुल शय्यापर, पहले निशा बिताता था,
सुयश और मंगल गीतोंसे, प्रात जगाया जाता था।
वही आज तू कुश-काशोंसे, युक्त भूमि पर सोता है
अति कर्कश शृगाल शब्दोंसे। हा हा ! निद्रा खोता है ॥ १२ ॥

द्विज-भोजनसे बचा हुआ शुचि, षटरस अन्न पुष्टिकारी,
खाकर जिसने इस शरीरको, पहले किया मनोहारी।
भूप ! वही तू आज उदर निज, बन-फल खाकर भरता है,
यशके साथ देह भी अपनी हा हा हा! कृश करता है ॥ १३ ॥

रत्न खचित सिंहासन ऊपर, जो सदैव ही रहते थे,
नृप मुकुटोंके सुम-नरज कण, जिनको भूषित करते थे।
मुनियों और मृगोंके द्वारा, खण्डित कुश-युत वन-भीतर,
अहह तात फिरते रहते है, वे ही तेरे पद मृदुतर ॥ १४ ॥

यह विचार कर कि यह दुर्दशा, बैरीने की है भूपाल,
हृदय समूल उखड जाता है, पाती हूं मैं व्यथा विशाल।
जिन मानी पुरुषोंका विक्रम, हर नहिं सके शत्रु-कुल-केतु,
उनको ईश्वरदत्त हार भी, होती है सुख ही का हेतु॥ १५॥

मुझपर करके कृपा वीरता, धारण करिये फिर इस बार,
क्षमा छोड़िये, जिसमे रिपुका हो जावे सत्वर संहार।
यह रिपुनाशक सहनशीलता, निस्पृह मुनियों ही के योग्य,
भूपालोंके लिये सर्वदा, वह सब भांति अयोग्य, अयोग्य॥१६॥

तेरे सम तेजोनिधान नर, यशोरूप धनके धनवान,
हे महीप! अरिसे पाकर भी, यदि ऐसा दुःसह अपमान।
बैठे रहें शांत चित्त, धारण किए हुए सन्तोष महान,
तो हा हा! हत हुआ निराश्रय, मानवान पुरुषोंका मान॥ १७॥

तुझे तुच्छ जँचते है यदि ये, शौर्य आदि शुभगुण-समुदाय,
क्षमा अकेली सतत सौख्यका, मूल जान पड़ती है हाय!
तो यह राजधर्मका सूचक, वीरोचित कोदण्ड विहाय,
वहीं अखण्ड अग्निको सेवा, करता रह तू जटा बढ़ाय॥ १८॥

कपट कर रहा है रिपु इससे, तुझ तेजस्वीको महिपाल,
पालन करना नहीं चाहिये, पूर्व प्रतिज्ञा प्रण इस काल।
अरिपर विजय चाहनेवाले, धरा धीश बल-बुद्धि-निकेत,
विविध दोष, की हुई सन्धिमें, दिखलाते हैं युक्ति समेत॥ १६॥

दैवयोगसे दुःखोदधिमें, तुझ डूबेको यह आशीश,
शत्रुनाश होनेपर लक्ष्मी, मिले पुनः ऐसे अवनीश,
जैसे प्रातःकाल, सिन्धुमे, मग्न हुए दिनकरको आय,
समिर-राशि हटनेपर दिनको, शोभा मिलती है सुउपाय॥ २०॥

अभ्यास

(१) वचन-वाणावलीसे क्या समझते हो? इसका सन्धि-विच्छेद करो।
(२) क्या द्रौपदीके वचन धर्मपरायण युधिष्ठिरके लिये उपयुक्त हैं? यदि हैं तो कैसे?
(३) इस पद्यमें नीति युक्त बहुतसी बातें भरी हैं। समझाओ।
(४) निम्नांकित शब्दोंका अर्थ बताओः—
वचन-वाणावली, महीपवर, कुलजा, कोपानल, वशंवदा निस्पृह।
(५) सन्धि-विच्छेद करो —
महीपवर, नराधिप।
(६) द्रौपदी वचन वाणावलीसे तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?
(७) द्रौपदीके उपदेशका भावार्थ अपने शब्दोंमें वर्णन करो?
(८) निम्नांकित शब्दोंके पर्यायवाची शब्द दोः—
वचनवाणावली, वशवदा, अकृत्रिम।

६—स्वामी शङ्कराचार्य

[ले०—राधाकृष्ण दास]

(बाबू राधाकृष्ण दास भारतेन्दुजीके सम्बन्धी थे, हिन्दी-भाषाका अनुराग उन्होंने ही आपके हृदयमें उत्पन्न किया था। आपकी गद्य-रचनाएं अधिक हैं, परन्तु सरस पद्य भी लिखते थे। अपने समयमें आप हिन्दी-भाषाके प्रसिद्ध लेखकोंमें थे। आपने लगभग बीस पचीस ग्रन्थोंकी रचना की। आपके काव्यात्मक गद्य बहुत ही गम्भीर, भावपूर्ण होते थे और अधिकतर दार्शनिक विचारोंसे आपकी रचनाएँ भरपूर हैं।)

हजार वर्षसे अधिक हुआ, शंकराचार्यने मालाबार प्रदेशमें नांबूरी ब्राह्मण-वंशमें जन्म ग्रहण किया था। कोई-कोई कहते हैं

कि इनका जन्म कर्णाट-देशान्तर्गत तुङ्गभद्रा नदी तीरवर्ती शृङ्ग-भेरी नामक नगरमे हुआ। सर्व-शास्त्रविशारद शिवगुरु इनके पिता थे। अष्टम वर्षमे उपनयन होनेपर ये वेदाध्ययनमे प्रवृत्त हुए। इनकी ऐसी चमत्कारपूर्ण मेधा, सुतीक्ष्ण बुद्धि और दृढ़ अध्यवसायमयी शक्ति थी कि बारह ही वर्षकी अवस्थामें ये सब शास्त्रोंमें असाधारण व्युत्पन्न हो गये। कोई-कोई कहते हैं कि पंचम वर्षमे उपनयन हुआ और अष्टममे वेदादि सब शास्त्रोंका अध्यन करके ये गुरु गृहसे लौट आये। ये निखिल वेद और सकल प्रकारके दर्शन, पुराण, इतिहास, काव्य और अलंकार प्रभृति पढ़कर थोड़े ही दिनोंमे सब शास्त्रोमे पारङ्गत हो गये थे। साङ्ख्य, पातञ्जल प्रभृति तर्क शास्त्रोंको ऐसे मनोयोगके साथ इन्होंने पढ़ा था कि उनके विषयमे तर्क उठाकर ये बड़े-बड़े पंडितोंको परास्त कर देते थे। अत्यन्त सुकुमार वयसमे ही इनकी ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि, असामान्य विद्या और प्रौढोचित विज्ञता देखकर सब लोग विस्मयापन्न होते थे।

कहते है, शङ्कराचार्यने एक वर्षके वयमे मातृ-भाषाकी वर्ण माला मुखसे स्मरण कर ली थी, दूसरे वर्षमे लिखे अक्षर पह-चानकर पढ़ना सीख लिया था, तीसरे वर्ष पुराण और काव्य पढ़ने लगे। उनकी स्मरण-शक्ति ऐसी थी कि जो एक बार सुनते वही कंठस्थ हो जाता। उनको पढ़ानेमें गुरुको कुछ भी कष्ट न होता, क्योंकि वे प्राय.सहाध्यायियोंको पाठ पढ़ा देते थे।

अत्यन्त अल्प वयसमें उनके पिता परलोकवासी हुए। कोई कोई कहते है, तीन ही वर्षकी अवस्थामें वे पितृहीन हो गये थे। अष्टम वर्षसे घरके सारे कामकाज उन्हें देखने पडे। इतनी थोड़ी अवस्थामे ही संसारका सारा भार उनके सिरपर आ पड़ा। इससे जीविका और गृहस्थीके सब झगड़ोंके लिये उन्हींको

उद्योग करना पडता था। ऐसी दुरवस्थामे पड़कर भी वे शिक्षा-विद्यासे विरत न हुए। जो समय मिलता, वह केवल विद्या-शिक्षा ही मे लगाते, क्षण मात्र भी विश्राम न करते।

थोड़े दिनोंमे इनका यश सौरभ चारों ओर फैल गया। राजा लोग भी दर्शनार्थी होकर इनके घर आने लगे। केरलाधिपतिने इनके यहां आकर विविध धर्मोपदेश लिया। उन्होंने इन्हें बहुत सा धन देना चाहा, परन्तु अर्थमे किंचित्मात्र भी लोभ न होनेसे इन्होंने कहा—"यह धन दरिद्रोंको दान कर दो, हमे इसकी आवश्यकता नहीं।"

इनको बहुत ही छोटी अवस्थामे संन्यास-धर्म-ग्रहणकी इच्छा हुई। इन्होंने मन-ही-मन स्थिर किया कि अकृतदार होकर ईश्वरोपासना और धर्मचिंतनमे जीवन अतिवाहित करेंगे। माताके कातर स्नेहपूर्ण वाक्योंसे ये उस समय अपना मनोरथ सिद्ध न कर सके, परन्तु विवाह नहीं किया। कैसे माता से आज्ञा मिले, रात-दिन इसकी चिन्ता करने लगे।

एक दिन शङ्कराचार्य गाँवसे थोड़ी दूरपर अपने किसी आत्मीयके घर गये थे। रास्तेमे एक क्षुद्र नदी पड़ती थी। उस नदीमें बहुत ही कम जल था, इससे सबलोग अनायास पार चले जाते, नावका प्रयोजन न होता। जानेके समय तो शंकरा-चार्य अनायास चले गये, परन्तु आनेके समय देखा कि नदी बरसातके जलसे उमड आई है, पार जानेका उपाय नहीं। थोडी देर सोच विचार कर नदी पार करनेके अभिप्रायसे हिले, परन्तु जल इतना बढ़ गया कि उनके गले तक पहुंच गया। प्रबल स्रोतमे बह जानेका ढंग देखकर माता पुत्रके जीनेकी आशङ्का देख अत्यन्त भीता और कातरा हुई। शङ्कराचार्यने यही सुन्दर अवसर अपने मनोरथके पूर्ण होनेका देखकर

कहा—"माँ, यदि तुम मुझे संन्यास धर्म लेनेकी आज्ञा दो तो इस विपदसे छूटनेकी आशा है, नहीं तो कोई आशा नहीं, क्योंकि परमेश्वर संन्यासीसे अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं। आपके संन्यास-धर्म ग्रहणकी आज्ञा देनेसे वह अवश्य हम लोगोंकी रक्षा करेंगे।

माँने उस समय विवेचनाका अवसर न पाया, पुत्रके रक्षणार्थ अगत्या इस प्रस्तावपर सम्मति दे दी। शङ्कराचार्य दूने साहसके साथ माँको पीठपर लेकर तैरकर नदी पार हुये। आत्मीय स्वजनों को एकत्र करके माताके रक्षणावेक्षणका भार उनपर छोड़ा। कभी कभी स्वयं आकर भेंट करता रहूंगा" इत्यादि वाक्योंसे उनको आश्वस्त किया, तदुपरन्त ईप्सित प्रदेशकी ओर चले गये।

पहले कर्णाट-देशमे जाकर कुछ दिन रहे, वहाँ विविध धर्म शास्त्र और दर्शन पढ़े। वहीं बौद्ध धर्म-शास्त्र भी पढ़ा। सब शास्त्रोंको देखकर उन्हें दृढ़ विश्वास हुआ कि जगतका स्रष्टा एक ही अनादि अनन्त जगदीश्वर है। भिन्न भिन्न शास्त्रकारोंने किसीने शिव, किसीने विष्णु, किसीने शक्तिको सृष्टिकर्त्ता कह कर निर्दिष्ट किया है सही, परन्तु ये सब भिन्न नहीं हैं, यह भी शास्त्रकारोंनेही स्पष्ट प्रकाशित किया है। भिन्न भिन्न धर्मशास्त्रोंमें जो परस्पर विरोध भय है वे सब उनकी तीक्ष्ण बुद्धिसे समान बोध हुए। किन्तु बौद्धोंका 'ईश्वर नहीं है" यह वाक्य उन्हें अत्यन्त असह्य हुआ। उस समय बौद्ध धर्मका भारतवर्षमें ऐसा प्राबल्य हो गया था और हिन्दूधर्मकी ऐसी दुरवस्था थी कि यदि शङ्कराचार्य सदृश असाधारण "बुद्धि-शाली" हिन्दूधर्मके रक्षणमें न कटिबद्ध होते तो हिन्दूधर्म लुप्त हो जाता। शङ्कराचार्य ने हिन्दू धर्मकी दुर्दशा देखकर बौद्ध धर्मको भारतवर्षसे निकाल देनेकी प्रतिज्ञा की।

काचीपुरके हिमशीलत नरपति बौद्ध धर्मके बड़े ही पक्ष-पाती थे। उनकी सभा प्रधान-प्रधान बौद्ध पण्डितोंसे परिपूर्ण रहती थी। शंकराचार्यने वहाँ जाकर बौद्धधर्मकी अलीकता प्रकाशित की। राजा और पंडित-मण्डली अत्यन्त क्रुद्ध हुई! शङ्कराचार्यके विचारकी प्रार्थना करनेपर राजाने क्रोधपूर्वक कहा—"बौद्धधर्मकी अलीकता प्रमाणित करनेकी चेष्टा करना बड़ी धृष्टताका काम है।"

अन्तमे वाद-विवादके उपरान्त यह स्थिर हुआ कि जो कोई विचारमे परास्त होगा उसे कोल्हूमे पेरनेका कठिन दण्ड भोगना पड़ेगा। राजाने नाना स्थानोंसे बड़े-बड़े बौद्ध पुरोहितो-को निमंत्रित करके बुलाया। उन लोगोंके साथ शङ्कराचार्य का विचार हुआ। इनकी अकाट्य युक्तिके आगे बौद्धोंके कूट तर्कजाल छिन्न-भिन्न हो गये और पण्डितोंको पराजय स्वीकार करनी पड़ी। राजा उन लोगोको उचित दण्ड देकर स्वयं बौद्ध धर्म छोड़ शङ्कराचार्यके मतके अनुवर्ती हो गये।

शङ्कराचार्यकी इस विजयका पूरा विवरण शिवकाची श्मशानेश्वर महादेवजीके द्वारपर और भगवती नदी तीरस्थ मेल्लीके देव मन्दिरमे पत्थरपर खुदा हुआ है।

काचीपुरसे वे तिरुपति नामक स्थानमे गये। वहाँ भी बड़े बड़े बौद्ध पण्डितोंको परास्त किया। इस भांति दक्षिण देशको विजितकर पश्चिमोत्तर देश विजय करनेकी इच्छासे विन्ध्या-चल पार हो काशी आये। यहाँ विविध दर्शन-शास्त्र प्रणेता मण्डन मिश्रको विचारमे परास्त किया। इसी भाँती काश्मीर, वल्लभीपुर प्रभृति उत्तर और पश्चिमके सब प्रदेशोंमे भ्रमण करके नाना कीर्ति स्थापित करते हुए उत्तर और पूर्व देशकी ओर यात्रा की। नेपाल, कामरूप आदि स्थानोंके पण्डितोंको

भी पराजित किया। अन्तमें काश्मीर राज्यके सरस्वती पीठमें कुछ दिन रहकर बत्तीस वर्षकी अवस्थामें केदारनाथमे मानव-लीला संवरण की।

थोडी ही अवस्थामे नाना शास्त्रोंमें विशारद होकर, भारत वर्षके नाना स्थानोंमें घूमकर, पण्डितोंको शास्त्रार्थमे परास्त कर अद्वैतवादका प्रचार कर, स्थान-स्थानपर मठ स्थापन कर वेदान्त चर्चाकी वृद्धि कर और वेदान्त दर्शन, कठादि उपनिषद् एवं श्रीमद्भगवद्गीता प्रभृति ग्रन्थोंके भाष्य तथा कई एक उत्कृष्ट ग्रन्थोंकी रचना कर वे संसारमें चिरस्मरणीय हो गये है। दीर्घ जीवी होते तो न जाने क्या करते।

शङ्कराचार्य जन्म ग्रहण न करते तो हिन्दू-धर्मका चिह्न भी कदाचित् न दिखलाई देता। हिन्दू धर्म उनका ऋणी है अद्वैतवाद प्रचारित करना ही उनका मुक्य उद्देश्य था। परन्तु वे यह कहते थे कि जो लोग इसे समझनेमें असमर्थ है उनको शिवादि देवताओंकी पूजा करना उचित है। इसी कारणसे अनेक स्थानोंमें अनेकदेव देवोकी मूर्तियाँ भी उन्होंने स्थापित कराई थीं।

अभ्यास

(१) स्वामी शकराचार्य कौन थे ? उन्होने हिन्दूधर्मकी रक्षा कैसे की ?

(२) शकराचार्यमें कौन-कौनसी विशेषताएँ थीं? उनके अद्भुत चमत्कारोंके सम्बधमें क्या जानते हो ?

(३) उन्होने अपनी मातासे सन्यासधर्म ग्रहण करनेकी आज्ञा कैसे ली?

(४) उनके धर्म प्रचारसे बौद्धधर्मपर क्या असर पड़ा ?

(५) उन्होंने किन-किन धुरन्धर विद्वानोंको परास्त किया?

(६) उनकी मेधा-शक्ति कैसी थी ?

(७) उनके समयमे भारतमें कौन-सा मत विशेष प्रबल था ? उस समय हिन्दूधर्मकी स्थिति कैसी थी ?

(८) उनके धर्म प्रचारका भारतपर क्या प्रभाव पड़ा ?
(९) देहावसानके समय उनकी क्या अवस्था थी ?
(१०) हिन्दूधर्मके प्रवर्तक ये कहे जा सकते हैं कि नहीं ?
(११) निम्नाङ्कित शब्दोंमें समास बताओ —
वाद-विवाद, पण्डित-मण्डली, दीर्घ जीवी ।

—:०:—

७—मातृ-भूमि

[ले०—श्री मैथिलीशरण गुप्त]

आपका जन्म सं० १९४३ विक्रममें चिरगाव जिला झांसीमें हुआ। आप बहुतही लोकप्रिय कवि हैं। आप खड़ी बोलीके युग परिवर्तनकारी कवि हैं। आपके लिखित मौलिक तथा अनुवादित काव्य ग्रन्थोंकी संख्या २० के लगभग है। जयद्रथ-वध, काव्यकी दृष्टिसे बहुत ही उच्च श्रेणीकी पुस्तक है। 'भारत भारती' ने आपकी लोकप्रियता बढ़ानेमें यथेष्ट सहायता की है यह पुस्तक आदिसे अन्ततक राष्ट्रीयभावोंसे भरपूर है। भारतीय नवयुवकोंमें राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करनेका बहुत कुछ श्रेय आपकी उज्जल कीर्ति 'भारत-भारती' को ही है। आप संस्कृत और बङ्गला भी जानते हैं। आप बहुत ही सरल हृदय, प्रतिभाशाली और मिलनसार पुरुष हैं।

(१)

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द्र-युग-मुकुट, मेखला रत्नाकर है।
नदियां प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डल हैं,
वन्दी जन खगवृन्द शेष फन सिंहासन है ॥
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेषकी,
हे मातृ भूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेशकी ॥

(२)

जिसकी रजमें लोट-लोटकर बड़े हुए है,
घुटनोंके बल सरक-सरककर खड़े हुए है।
परम हंस-सम बाल्यकालमें सब सुख पाए,
जिसके कारण "धूल भरे हीरे" कहलाए॥
हम खेले-कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोदमे,
हे मातृभूमि ! तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोदमें॥

(३)

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसीसे तू लेती है।
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्योंके द्वारा,
पोषण करती प्रेम भाव से सदा हमारा॥
हे मातृ-भूमि। उपजे न जो तुझसे कृषि अंकुर कभी,
तो तड़प-तड़प कर जल मरें जठरानलमें हम सभी॥

(४)

पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा ?
तेरी ही यह देह तुझीसे बनी हुई है,
बस, तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है।
फिर अंत समय तूही इसे अचल देख अपनायगी,
हे मातृ भूमि ! यह अंतसे तुझमें ही मिल जायगी॥

(५)

सुरभित, सुन्दर सुखद सुमन तुझपर खिलते हैं,
भाँति-भाँतिके सरस सुधोपम फल मिलते हैं,

औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातु वर रत्नोवाली।
जो आवश्यक होते हमें मिलते सभी पदार्थ हैं,
हे मातृ-भूमि ! वसुधा, धरा तेरा नाम नाम यथार्थ है॥

(६)

दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी।
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी,
पुष्पोंसे तरु राजि ? कर रही पूजा तेरी।
मृदु मलय-वायु मानो तुझे चदन चारु चढ़ा रही,
हे मातृ-भूमि ! किसका न तू सात्विक-भाव बढ़ा रही॥

(७)

क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है।
विभवशालिनी, विश्वशालिनी, दुःख हरती है,
भयनिवारिणी, शान्तिकारिणी, सुखकर्त्री है।
हे शरण-दायिणी देवि ! तू करती सबका त्राण है,
हे मातृ-भूमि ! सतान हम, तू जननी, तू प्राण है॥

(८)

जिस पृथ्वीमें मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान ! कभी हम रहें न न्यारे।
लोट लोट कर वहीं हृदयको शान्त करेंगे,
उसमें मिलते समय मृत्युसे नहीं डरेंगे।
उस मातृ-भूमिकी धूलमें जब पूरे सन जायँगे,
होकर भव-बंधन-मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे॥

अभ्यास

(१) नीलाम्बर, परिधान, वसुधा, मलय, चारु, विभव, वात्सल्य आदि शब्दोंके अर्थ लिखो ।

(२) मातृ-भूमि, मलय-वायु, प्रेम-प्रवाह, सूर्य-चन्द्रमें कौनसा समास है ?

(३) मातृ-भूमिके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है, क्यों वह हमारी माता है ?

(४) छन्द न० ३ का भावार्थ लिखो ।

(५) मातृ भूमिके प्रति अत्यन्त प्रेम क्यों होता है ?

(६) उसके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है ?

(७) मातृ-भूमिके सम्बन्धमे कोई दूसरी कविता सुनाओ ?

(८) छन्द न० ७ के विशेषणोंका उल्लेख करो ?

(९) पर्यायवाची शब्द बताओ ?
अभिषेक-पयोद, जठरानल, विभवशालिनी ।

(१०) समास विच्छेद करो —
खग वृन्द, रत्नाकर, विश्वपालिनी ।

८—फोनोग्राफका आविष्कार

[ले०—श्रीनाथ सिंह]

फोनोग्राफका आविष्कार अमेरिका निवासी एडिशन साहबने १८७६ ई० के आस-पास किया था । आजकल जितने फोनोग्राफ देखनेमें आते हैं उन सबका श्रेय उन्हींको है । परंतु कहते हैं, अबसे हजारों वर्ष पहले चीनवाले फोनोग्राफ बनालेते थे । यह बात सच हो सकती है । प्राचीन कालमें चीनके लोग बड़े बुद्धिमान थे । छापाखाने का भी आविष्कार चीन वालोंने कर

लिया था। परन्तु इससे क्या ? चीनके आविष्कारोंसे दुनियाको कोई लाभ नहीं पहुँचा। चीनके आविष्कारक चीनके बाहर नहीं पहुँच सके। वहीं उनका जन्म हुआ और वहीं उनका अंत हो गया। पर उनकी कहानी दिलचस्प है। चीनवालोंने फोनोग्राफका आविष्कार कैसे किया ? यह हम नीचे बताते हैं—

कोई तीन हजार वर्ष पहलेकी बात है। चीन देशका एक सूबेदार राजधानीसे करीब दो हजार कोसकी दूरीपर रहता था। एक बार उसको चीनके राजाके पास एक गुप्त समाचार भेजनेकी जरूरत पड़ी। उस समाचारका भेद खुल जानेपर राज्य की भारी हानि होनेका एक भय था। इसलिये किसी दूतके जरिये कहलाना या चिट्ठी लिखकर भेजना ठीक नहीं था। कई कारणों से वह अपने सूबेसे हटकर राजधानीको जा भी नहीं सकता था। अन्तमें उसने बहुत सोच-विचार कर एक सन्दूक तैयार किया। जो कुछ उसे कहना था, उसी सन्दूकमें उसने कह दिया। राजाने ज्यों ही उस सन्दूकको खोला, सूबेदारकी सारी बातें सुनाई पड़ने लगीं। इतना ही नहीं, वह आवाज सूबेदारकी आवाजसे बिलकुल मिलती-जुलती थी।

यहाँ तुम यह पूछ सकते हो कि उसने चिट्ठी क्यों नहीं लिखी सन्दूकमें अपनी आवाज भरकर क्यों भेजी ? चिट्ठी शायद इस लिये नहीं लिखी कि उसे डर था कि कोई दूसरा न पढ़ ले या किसी दूसरेके हाथ चिट्ठी न लग जाय। और सन्दूकसे आवाज निकालनेकी तरकीब कोई जान नहीं सकता था। जो हो, यही फोनोग्राफके जन्मकी आदि कथा कही जाती है।

चीनमें इस तरह समाचार भेजनेका रिवाज खूब बढ़ा। लड़ाईके दिनोंमें दुश्मनोंपर भेद खुल जानेके डरसे गुप्त समाचार इसी तरह भेजे जाते थे। चीनकी पुरानी किताबोंमें इस समा-

चारके भेजनेका जिक्र पाया जाता है। यहाँतक कि सन्दूकके बदले तांबेके छड़मे भी शब्द भरकर भेजे जाते थे

चीन ही नहीं, प्राचीन मिश्र देशमे भी लोगोंको यह वार्त मालूम थी। वहांकी 'मेमन' नामक कब्रोसे किसूम किसूमके गीत आपही सुन पड़ते थे।

योरोपवाले बहुत पहलेसे बोलनेवाली कलके बनानेकी फिराकमे थे। १२६४ ई० मे "राजरबेकन" नामक एक आदमीने लोहेकी एक मूर्ति बनाई थी। उसमे कुछ ऐसे पुर्जे लगे थे कि वह बोलती थी। इटलीमे १५८० ई० के आसपास 'पार्टो' नामके एक मनुष्यने नल मे आवाजको कैद कर लिया था। जब वह अपने नलसे मनुष्यकी आवाज निकालता था, तब लोग अचम्भे मे आ जाते थे। १६६९ ई० मे जर्मनीके एक डाक्टरने इसी तरह बोतलमे शब्दोंको बन्द कर रखनेकी विधि निकाली थी। १७५१ ई० मे 'लिओनार्ड ह्वीलर' नामका गणितका एक जबर-दस्त विद्वान् हुआ। उसने 'बोलनेवाली कल' बनानेके बहुतसे उपाय सोचे और उन सब उपायोको उसने अखबारमे छपवा दिया। उसीके बताये नियमोके अनुसार कुछ वैज्ञानिकोंने मिलकर १७९७ ई० मे एक बोलनेवाली कलका आविष्कार किया। उसके बाद १८५९ ई० मे कोनिंग नामके एक जर्मनने एक अङ्गरेजकी सहायतासे एक कल बनाई जो तबतककी बनी सभी कलोसे अच्छी निकली। आजकलका फोनोग्राफ इसी कलका सुधार हुआ रूप है।

इसके बाद 'एडिशन' साहबका फोनोग्राफ बना। जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं, वही उसके आविष्कारक समझे जाते हैं। 'एडिशन' साहबने फोनोग्राफ कैसे बनाया? इसकी भी विचित्र कहानी है :—

१८७६ ई० की बात है, वे टेलीफोनमें कुछ जरूरी सुधार कर रहे थे। आवाजका बहुत कॉपना दूर करनेके लिये वे टेली-फोनके किसी बारीक हिस्सेमें एक सुई डाल उसे उँगलीसे दबाये हुए थे। एकाएक सुईकी नोकसे उन्हें एक प्रकारकी आवाज निकलती हुई मालूम पड़ी। बस, उन्होंने समझ लिया कि सुई-की मददसे आदमीकी आवाजकी तसवीर खींची जा सकती है और उसी तसवीरपर सुई फिरानेसे वही आवाज फिर पैदा की जा सकती है। बस, उन्होंने फोनोग्राफ बनाकर तैयार कर दिया। फोनोग्राफसे आवाज निकालनेके लिये पहले तवेको हाथसे घुमाना पड़ता था। बादको घड़ीके समान उसमें कल-पुर्जे लगाये गये, जिससे अब वह खुद घूमता है। पर अब तो बिजलीके बलपर भी फोनोग्राफके तवे घुमाये जाते हैं। पहलेके फोनोग्राफोंमें भी खराबियॉ थीं और सुननेवालेको अपने कान-में एक रबरकी नली लगानी पड़ती थी। उससे सब लोग आवाज नहीं सुन सकते थे। यह ऐब दूर करनेके लिये उसमें भोंपू लगा। पर अब तो बिना भोंपूके भी आवाज निकलती है।

फोनोग्राफके बारेमें अभी बहुतसी बातें सोची जा रही हैं। कुछ लोगोंका खयाल है कि इससे एक देशकी भाषा दूसरे देशवालोंको बड़े मजेमें सिखाई जा सकती है। यदि फोनोग्राफमें एक दिनका पूरा पाठ भरकर दर्जेमें लगा दिया जाय, तो मास्टरकी जगहपर लड़कोंको वही पढ़ा सकता है। हॅगरीमें 'मीकीफोन' नामकी एक कल बनी है। यो देखनेमें जान पड़ता है कि वह एक छोटी-सी घड़ी है। घड़ी हीकी भांति उसमें चाभी भी दी जाती है। एक बार चाभी देनेसे उसमें १२ तवेतक बजते हैं। एक फोटोफोन भी निकला है। उसमें बोलनेवालोंकी तसवीर भी दिखाई पड़ती है और

बोलता हुआ सिनेमा शायद तुमने देखा ही है। यह हालका आविष्कार है। इससे सिनेमा जहाँ पहले चलती-फिरती मूक तसवीरें दिखाई पड़ती थीं, वहां अब आवाज भी सुनाई देती है।

अभ्यास

(१) फोनोग्राफके आविष्कारके बारेमें क्या जानते हो ?

(२) फोनोग्राफका आविष्कार किसके द्वारा और किस सन्‌में किया गया बताओ।

(३) फोनोग्राफके अविष्कारमें क्रमश कितने परिवर्तन हुए हैं ? समझाओ

(४) क्या फोनोग्राफ आदि आविष्कार भारतके लिये लाभदायक हैं ? यदि हैं तो कैसे ?

(५) आधुनिक नवीन आविष्कारोंने भारतकी आर्थिक स्थितिपर क्या प्रभाव डाला है ?

(६) भाँति-भाँतिके वैज्ञानिक आविष्कार भारतको उन्नति-शिखरपर ले जा रहे हैं, समझाओ।

(७) पर्यायवाची शब्द लिखो,—
आविष्कार, सूबेदार, ज़िक्र, दिलचस्प।

(८) आविष्कारपर एक निबन्ध तैयार करो।

६—ज्ञान स्रोत

[ले० पं० नाथूराम "शङ्कर"]

(स्वर्गीय प० नाथूराम "शङ्कर" शर्माका जन्म चैत्र शुक्ल ५ सं० १९१६ वि० में हरदुआगज, अलीगढ में हुआ था। 'शङ्कर' जीकी गणना आधुनिक खड़ी बोलीके श्रेष्ठ कवियोंमें है। कई संस्थाओंसे आपको कविराज, भारत-प्रज्ञेन्दु, कविता-कामिनी-कान्त आदि उपाधियां प्राप्त हैं। आपकी लिखी हुई शङ्कर-सरोज, अनुराग-रत्न, गर्भरण्डा

रहस्य, वायसविजय आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं इसमें अनुराग-रत्न एक महत्व पूर्ण काव्य है।)

(१)

कब कौन अगाध पयोनिधिके उस पार गया जलयान विना।
मिल प्राण, अपान, उदान रहें, तनमें न समान सव्यान विना॥
कहिये ध्रुव-ध्येय मिला किसको, अधिकम्प, अचंचल ध्यान विना।
कवि 'शङ्कर' मुक्ति न हाथ लगी, भ्रमनाशक निर्मल-ज्ञान विना॥

(२)

पढ पाट प्रचण्ड प्रमाद भरे, कपटी जन जन्म गमाय गये।
रण रोप भयानक आपसमें, भट केवल पाप कमाय गये॥
धन, धाम, विसार धरातलमें, धनवान असख्य समाय गये।
कवि "शङ्कर" सिद्धि मनोरथ की, जड़ शुद्ध सुबोध जमाय गये॥

(३)

उपदेश अनेक सुने मन को, रुचि के अनुसार सुधार चुके।
धर ध्यान यथा विधि मन्त्र जपे, पढ़ वेद पुराण विचार चुके॥
गरु गौरव धार महन्त बने, धन धाम कुटुम्ब विसार चुके।
कवि 'शङ्कर' ज्ञान विना न तरे, सब ओर फिरे झख मार चुके॥

(४)

निगमागम तन्त्र पुराण पढ़े, प्रतिवाद प्रगल्भ कहाय खरे।
रच दम्भ प्रपञ्च पसार घने, वन वचक वेप अनेक धरे॥
विचरे कर पान प्रमाद सुरा, अभिमान हलाहल खाय मरे।
कवि 'शङ्कर' मोह महोदधि से, वकराज विवेक विना न तरे॥

(५)

गुरु गौरव हीन कुचाल चलें, मतभेद पसार प्रपंच रचें।
दिन-रात मनोमुख मूढ़ लड़ें, चहुँ ओर घने घमसान मचे॥
व्रत बन्धनके मिस पाप करें, हठ छोड़ न हाय लबार लचें।
कवि 'शङ्कर' मोह महासुर से, विरले जन पाय विवेक बचे॥

(६)

तन सुन्दर रोग विहीन रहै, मन त्याग उमग उदास न हो।
मुख धर्म-प्रसंग प्रकाश करे, नर-मडल में उपहास न हो॥
धनकी महिमा भरपूर मिले, प्रतिकूल मनोज-विलास न हो।
कवि 'शङ्कर' ये उपभोग वृथा, पटुता प्रतिभा यदि पास न हो॥

(७)

दिन रात समोद विलास करें, रस-रंग भरे सुख साज वने।
शिरधार किरीट कृपाण गहे, अवनी भरके अधिराज वने॥
अनुकूल अखंड प्रताप रहै, अविरुद्ध अनेक समाज वने।
कवि 'शङ्कर' वैभव ज्ञान विना, भवसागर के न जहाज वने॥

अभ्यास

(१) ज्ञान स्रोतकी प्रमुख शिक्षाओंका वर्णन करो ?

(२) अर्थ समझाओ ?

निगम .. विवेक बिना न तरे।

(३) समास बताओ—

पयोदधि, भ्रमनाशक, महावन।

(४) सन्धि-विच्छेद करो।

महोदधि, निगमागम, धरातल।

(५) पर्यायवाची शब्दोंको बताओ—

अविकल्प, मिस, विरक्त, मनोज, विलास।

(६) ज्ञान स्रोतने ससारकी निस्सारिता दिखलाई गई है। समझाओ।

(७) निम्नलिखित पक्तिके मुख्य-भावको समझाओ —

कवि "शङ्कर" वैभव . न जहाज वने।

(८) 'ज्ञानपर एक छोटासा निवध तैयार करो ?

१०—मिट्टीका तेल

[ले०—प्रो० हरनारायण बाथम एम- ए०]

प्राय पचास वर्षसे मिट्टीका तेल भूगर्भसे निकाला जाने लगा है और इतने ही दिनोंमे इसका व्यवहार बहुत विस्तीर्ण हो गया है। सन् १८५६ ई० मे कर्नल ड्रेकने पहले पहल इसका कुआ अमेरिकामे खोदा था। इसके पहले भी कहीं कहीं इस पृथ्वी पर मिट्टीके तेलकी खाने लोगोको मालूम थीं। कहीं-कहीं तो चरवाहे इसके स्थानको जानते थे, वहाँ वे अपने जानवरोको ले जाते थे और इस तेलको जलाकर अग्नि तापते थे। ईसामसीहके पहले काकेशस पहाड़पर पारसियोका एक मंदिर था, वहाँ भूमिके नीचे इस तेलकी खान थी, उसीके ऊपर एक छेद भी था, वहाँ इस तेलकी वाष्प अर्थात गैस निकला करती थी, जिसको लोगोने जला रखा था और वह दीपकके रूपमे विना किसी तेल या बत्तीके जला करती थी। अग्निके उपासक पारसी लोग इसे पूजा करते थे। पुराने समयमे मिश्रके लोग भी इसका व्यवहार करते थे। चीन और जापानमे भी इसकी खानोसे पुराने तरीकेसे काम लिया जाता था। गेलेसिया और रूमानियाकी पुरानी पुस्तकोंसे मालूम होता है कि इसके पहले भी मनुष्य इस तेलको भूमिसे निकालते थे, परन्तु इस समय इसकी विशेष खानें, जिनसे दुनिया भरको तेल पहुँचता है, यूनाइटेड-स्टेट्स अर्थात अमेरिका रूस, रूमानिया, आस्ट्रिया, हंगरी, बर्मा, आसाम, जापान, जर्मनी, पर्शिया इत्यादिमे हैं। इन स्थानोको छोड़कर और भी अनेक स्थान हैं जहाँ कि यह तेल भरा पडा है और जहाँ अभीतक मनुष्योंने हाथ भी नहीं लगाया। यदि पूर्वोक्त खानें, जिनसे सारी दुनियाको इस समय तेल निकलता है, खाली हो जाय तो

भी ऐसी खानें भरी पड़ी हैं कि जिनसे दुनिया भरको सैकड़ों, हजारों वर्षोंके लिये तेल पहुँच सकता है। आजकल हर सप्ताहमें १० लाख टन तेल पूर्वोक्त खानोंसे निकाला जाता है।

आरम्भमें यह नहीं मालूम था कि इस तेलका व्यवहार प्रकाश उत्पन्न करनेके लिये होगा। परन्तु जबसे यह मालूम हुआ तबसे अमेरिकाके विज्ञान वेत्ताओंने इसकी ओर ध्यान दिया और इसी मिट्टीके तेलसे अनेक प्रकारकी वस्तुओंको निकालकर वे संसार भरमें बेचते हैं, जिससे उनके देशकी आर्थिक उन्नति हुई और उन सब चीजोंके बनानेके तरीकोंके निकालनेमें उनके देशमें विद्याकी उन्नति हुई। परन्तु अभीतक वे स्थिर नहीं कर सके कि यह तेल भूगर्भमें किन-किन वस्तुओं-से बनता है। इनमेंसे बहुतोंकी राय है कि यह तेल जानवरों और वृक्षोंके उन मृत शरीरसे बनता है जो भूमिके नीचे दब गये थे। इस बातको साबित करनेके लिये एङ्कलर नामक विज्ञानवेत्ताने जीवोंकी चर्बीसे एक ऐसी वस्तु निकाली है जो बिलकुल मिट्टीके तेलके समान है।

मिट्टीके तेलसे अनेक प्रकारके काम हुए और अभीतक नये-नये काम निकलते आते हैं और इसका खर्च दिन-दिन बढ़ती ही जाता है। यहाँतक कि ४० वर्षमें इसका खर्च १६ गुना बढ़ गया है। इतना व्यवहार होनेपर भी कुछ मनुष्योंका ऐसा विचार है कि अभी तो इस नये उद्योगका आरम्भ हुआ है।

जिस स्थानमें इसकी खानें होती हैं वह स्थान एक काले जले हुये जंगलके समान होता है। वहाँ सब चीजे काली होती है, यहाँतक कि आकाश भी इसके धुएंसे काला हो जाता है। यह तेल भूमिके बहुत नीचे भागमें बालू और जलके संग मिला रहता है और वहाँसे पम्प और नलोंके जरियेसे निकाला

जाता है, अथवा बड़े-बड़े डोलोंके जरिये। ये नल भूमिमें गाड़ दिये जाते हैं और जब इनकी लम्बाई १००० से २५०० फीटकी हो जाती है, तब तेलकी सतह मिलती है। फिर इतने नीचेसे तल एंजिन और पम्पके जरिये ऊपर लाया जाता है।

जिन खानोंसे तेल अधिक बालू सहित निकलता है, वहाँ पम्प और नल नहीं काम देते; क्योंकि बालू नलोंमें भर जाता है, इसलिये वहाँ डोलोंका व्यवहार होता है। यह डोल ५० या ६० फीट लम्बे नलके समान होता है। एक डोलमें लगभग २७५ गेलन एक गेलनमें ६ बोतलें होती हैं; तेल आता है। यों यह २४ घण्टोंमें १००००० गेलन निकल लाता है। इस प्रकार जब तेल कुआंसे निकाला जाता है तब पहले वह एक कुण्डमें स्थिर होनेके लिये रखा जाता है। वहाँ सब बालू इत्यादि बैठ जाती है, तब साफ तेल दूसरे तालावमें भरा जाता है। कभी-कभी आरम्भहीमें जब नल तेलतक पहुँचता है, तब तेल इतने जोरसे ऊपर उठता है कि फिर वह काबूमें नहीं रहता, उसकी धार बड़े भयंकर रूपसे ऊपर आती है। वह भूमिमें ऊँची उठ जाती है और कभी-कभी उसमें अग्नि भी लग जाती है तो उसका रूप और भयकर हो जाता है। कभी-कभी तेल इस प्रकार थोड़े ही समयतक निकला करता है, पर कभी कभी तो साल साल भर बराबर निकला जाता है, जैसे बाकूमें अभी तक जारी है। इस अवस्थामें तेलवालों को बड़ी हानि पहुँचाती है। जब स्वच्छ तेलके तालाव भर जाते हैं, तब वहाँसे तेल नलोंसे सफाई के कारखानोंमें पहुँचाया जाता है, वहाँ भभकोंके जरिये साफ होता है और कई अंशों में विभाजित किया जाता है, जैसे कैरोसिन, पैराफिन, पेट्रोल इत्यादि।

ये सब अंश बड़े महत्वके है और इनसे बड़े बड़े काम लिये जाते हैं। यह असंख्य घरोंको प्रकाश पहुँचाता है। जब समुद्रमे तूफान आता है तब मिट्टीका तेल डाल दिया जाता है। इसके पड़नेसे समुद्र शान्त हो जाता है। बहुतसे लोग मच्छरो और अनेक प्रकारकी बीमारियोंके कीड़ोको मारनेके लिये इसका छिड़काव करते है।

अभ्यास

(१) मिट्टीका तेल अन्य तेलोंसे किस प्रकार भिन्न है?
(२) कहा-कहा मिट्टीका तेल पाया जाता है?
(३) ससारमें विशेषकर इसका क्या उपयोग होता है?
(४) साफ करनेपर इसकी कितनी कितनी किस्में बन जाती है?
(५) मिट्टीका तेल किस प्रकार खानसे निकाला जाता है और किस प्रकार साफ किया जाता है?

११—अङ्गद और रावण

[ले० पं० रामचरित उपाध्याय]

(पन्डित रामचरितजी उपाध्यायका जन्म एक विद्वान सरयूपारीण ब्राह्मण वशमें विक्रम सवत् १९२९ कार्तिक कृष्ण चतुर्थी रविवारको गाजीपुरमें हुआ था। स० १९४७ में उपाध्यायजी काशीमे आये और वहीं महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्रीके गृहपर रहकर पाँच छः वर्षों तक विद्याध्ययन करते रहे। इनकी बुद्धि विलक्षण थी। इससे व्याकरण और साहित्यका बहुत अच्छा ज्ञान सहज हीमें हो गया। उपाध्यायजीका गार्हस्थ्य जीवन अत्यन्त ही सादा है। इन्हें स्वन्त्रता बहुत प्यारी है। इन्होंने गाजीपुरमें एक सस्कृत पाठशाला और सनातन धर्म सभाकी स्थापना की है।

अंगद

मम निवेदन है कुछ आपसे,
सुन उसे उरमें धर लीजिये।
ग्रहण है करता जिस युक्तिसे
मधुप सारस-सार सहर्ष हो ॥ १ ॥

जनकजा रघुनायक हाथमें,
तुरत जाकर अर्पण कीजिये।
पर-वधूजन से रहते सदा,
अलग सन्तत सन्त तमीचर ॥ २ ॥

कुशल से रहना यदि है तुम्हे,
दनुज ! तो फिर गर्व न कीजिये।
शरणमें गिरिये रघुनाथके,
निर्बलके बल केवल राम हैं ॥ ३ ॥

दुखद है तुमको जनकात्मजा,
तुरत दूर उसे कर दीजिये।
सुखद हो सकती न उलूकको,
नय-विशारद ! शारद-चन्द्रिका ॥ ४ ॥

बहुत बार हुए विजयी सही,
पर नहीं रहते दिन एक से।
सम्हलके रहिये, अब आपकी,
ग्रह दशा न दशानन ! है भली ॥ ५ ॥

स्वकुल की करिये शुभ कामना,
सपदि युक्ति वही नृप ! सोचिये।
न अब भी जिसमे करना पड़े,
कठिन सङ्गर सङ्ग रमेशके ॥ ६ ॥

स्वमनको वशमें रखिये सदा,
अनय से पर वस्तु न लीजिये।
नृप ! कभी सुखदायक है नहीं,
सुत, रसा, धन, साधनके विना ॥७॥

समय है अनमोल, कुकर्म में,
तुम विनष्ट करो उसको नहीं।
दनुज हे ! जगमें सुखदायिनी,
नियमहीन मही न महीप को ॥ ८ ॥

परम वीर चढ़े रघुवीर हैं,
तव पुरी पर वारिधि बांधके।
क्षितिप ! आकरके रिपु-राज्यमें,
तनिक भीरु कभी रुकते नहीं ॥ ९ ॥

कवि, गुणी, बुध, वीर नयज्ञ भी,
समझिये मनमें निजको स्वयम्।
पर विना कुछ कार्य्य किये कभी,
न मन मोदक मोद-कलाप है ॥ १० ॥

सब सुरासुर है बस आपके,
करगता यदि हो सब सिद्धियां।
तदपि हे दनुजेश्वर ! जानना,
निज विनाशक नाशक रामको ॥११॥

अखिल लोक नृपेश्वर रामको,
समझके उनसे मिलिए अभी।
यह पुरी रघुनाथ-रणाग्निमें,
दनुज ! होम न हो, मनमें डरो ॥१२॥

रावण

सुन कपे ! यम, इन्द, कुबेरकी,
न हिलती-रसना मम सामने।

तदपि आज मुझे करना पड़ा,
मनुज सेवकसे बकवाद भी ॥ १ ॥

यदि कपे ! मम राक्षस राजका,
स्तवन तुझसे न किया गया ।

कुछ नहीं डर है—पर क्यों वृथा,
निर्लज ! मानव मान बढ़ा रहा ॥२॥

तनय होकर भी मम मित्र का,
शठ ! न आकर क्यों मुझसे मिला ।

उदरके वश हो किस भाँति तू,
नर सहायक हाय ! कपे ! हुआ ॥३॥

वसन भाजन लें मुझसे सदा,
विचर तू सुखसे मम राज्यमें ।

उस नृपात्मजके हित दे वृथा,
सुखद जीव न जीवनके लिये ॥ ४ ॥

तुम बिना करतूत बका करो,
वचन वीर सुनो ! हम वीर हैं ।

रिपु-विनाशक यज्ञ किये बिना,
समर-पावक पा सकते नहीं ॥ ५ ॥

बल सुनाकर तू शठ! रामका,
पच मरे, पर मैं डरता नहीं ।

अहि भयातुर हो करके बता,
कब तिरोहित रोहितसे हुआ ॥ ६ ॥

कवल-दायकके गुण गानमें,
निरत तू रह वानर ! सर्वदा ।

समर है सुख-दायक शूरको,
कब रुचा रण चारणको भला ?॥७॥

जनकजा हृत चित्त हुआ सही,
तदपि तापससे कम मैं नहीं।
मधुर मोदक क्या पच जायगा,
कपि ! सवा मन वामन-पेटमें ॥ ८ ॥

लड़ नहीं सकता मुझसे कभी,
तनिक भी नृप बालक स्वप्नमें।
कब, कहाँ कह तो किसने लखा,
कपि ! लवा रण वारणसे भला ॥९॥

यह असम्भव है यदि राम भी,
समर सम्मुख रावणसे करे।
कह कपे ! उठ है सकती कभी,
यह रसा बक-शावक चोंचसे ॥ १० ॥

निर्लज हो, बाहुको, निज नाथके-
सुयश-गान करो, कपि-जाति हो।
जगतमें दिखलाकर पेटको,
वचन वीर ! न वीर बना कभी ॥११॥

मम नहीं हित-साधक जो हुआ,
वह न हो सकता परका कभी।
कपट रूप बनाकर रामका,
कपि ! विभीषण भीषण शत्रु है ॥१२॥

मर मिटें रणमें, पर रामको,
हम न दे सकते जनकात्मजा।
सुन कपे जगमें बस वीरके,
सुयश का रण कारण मुख्य है ॥१३॥

चतुरता दिखला न व्यर्थ तू
रसिक हैं रणके हम जन्मसे ॥

रुक नहीं सकते सुनके कभी,
वचन-वत्सल वत्स ! लड़े विना ॥१४॥

अभ्यास

(१) अङ्गद और रावणका सवाद सक्षेपमें बताओ ?
(२) निम्नलिखित पक्तिके मुख्य भावको पूर्ण रीतिसे समझाओ—
नृप ! कभी सुखदायक.... साधनके बिना ।
(३) अङ्गदके वचनमें नीति और ज्ञान दोनों सम्मिलित हैं । समझाओ ?
(४) निम्नांकित शब्दोंके अर्थ बताओ—
तमीचर, मधुप, दनुज, जनकात्मजा, क्षितिप
(५) समास बताओ :—
नय विशारद, रिपुराज्य, दनुजेश्वर, रघुनाथ-रणाग्नि
(६) पर्यायवाची शब्द दो —
नृपात्मज, जनकात्मजा, चक्रशावक, सुरासुर, मोद-कलाप

१२—भारतीय संस्कृति

[ले०—श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल एम० ए०]

यद्यपि 'संस्कृति' और 'सभ्यता' ये दो शब्द मिलते जुलते प्रतीत होते हैं, तथापि ये एक दूसरेसे भिन्न हैं । 'संस्कृति' किसी जातिके मानसिक, आत्मिक तथा बुद्धि सम्बन्धी विकासको सूचित करती है और 'सभ्यता' भौतिक विकासको । 'संस्कृति' जीवनके आदर्शों पर प्रकाश डालती है । वे ही आदर्श, जिनका आधार संस्कृति है, जब जीवनमें क्रियात्मक रूपसे प्रकट होते हैं तो उन्हें 'सभ्यता' का नाम दिया जाता है । किसी जातिके लौकिक और पारलौकिक, दोनों प्रकारके जीवन बितानेका ढग

और तद्विषयक विचार ही उसकी संस्कृति है। उस जातिके अन्तरतम भावो, जीवन संबंधी विचारो और उच्च आदर्शोंको भी संस्कृति ही कहा जा सकता है। 'सभ्यता' केवल संस्कृति रूपी बीजका विकास है। यदि किसी जातिकी श्रेष्ठताकी जाँच करनी हो, तो उसकी संस्कृतिका निरीक्षण करना आवश्यक है।

भारतकी संस्कृति अन्य देशोंकी संस्कृतिसे भिन्न है। इसकी भिन्नता ही इसकी विशेषता है। प्रारम्भिक कालसे ही भारतकी संस्कृति उसकी अमूल्य निधि है। इस निधिको पाकर जनक जैसे वैभवशाली सम्राट वैराग्य वृत्तिको प्रधानता देते हुये जीवन पर्य्यन्त साधु बने रहे। वृहत् मौर्य साम्राज्यके अधिपति अशोक इसी निधिके बलपर आयु पर्य्यन्त एक साधारण भिक्षुक-कासा जीवन व्यतीत करते रहे। इसी निधिको लेकर बौद्ध भिक्षुओंने अपना सन्देश सुनानेके हेतु संसारके कोने-कोनेमे विचरण किया। इसको पाकर ही भारतने ईजिप्ट, यूनान और इनके द्वारा समस्त यूरोपको सभ्यताका पाठ पढ़ाया, भारत अपनी संस्कृतिके कारण ही अतीत कालके गौरवको प्राप्त हुआ और उसी संस्कृतिके बलपर ही यह देश आज भी गर्वसे मस्तक ऊँचा उठा सकता है। अपने प्राचीन आदर्शोंके द्वारा ही भारत अबतक अपने अस्तित्वको बनाये रख सका है।

भारतीय संस्कृति जिन आदर्शोंको मनुष्यके सामने रखती है, वे बड़े ही विशाल, बड़े ही गहरे है। पाश्चात्योंका जीवन सम्बन्धी आदर्श बहुत छिछला है पश्चिमका आदर्श है "शरीर ही जीवनका आदि और शरीर ही जीवनका अन्त है" पर पूर्वका आदर्श है "शरीर आत्माकी उन्नतिका साधन मात्र है।" दोनोंके आदर्शोंमे कितना अन्तर है। पश्चिममे जो जीवनका अन्तिम ध्येय है, वह भारतमे जीवनके अन्तिम उद्देश्यकी प्राप्तिका केवल

एक साधन है। पश्चिम, शरीरका उपासक है। शरीरोपासना ही उसका अन्तिम ध्येय है। किन्तु पूर्व—विशेषकर भारत शारीरिक उन्नतिको अपना उचित लक्ष्य नहीं बनाता। एक भारतीय इसलिये शारीरिक वृद्धि चाहता है कि उसका शरीर आत्मिक उन्नतिमें सहायक हो सके। शरीरकी उन्नति करते हुए आत्मिक विकास करना उसका अन्तिम उद्देश्य है। पश्चिमकी संस्कृतिमें आध्यात्मिक विकासके लिये स्थान नहीं। आध्यात्मिक विकासके द्वारा ही जीवनमें आत्मिक शांति और सुख मिलता है। जो संस्कृति आध्यात्मिक विकासके सिद्धांतकी अवहेलना करे वह निश्चय ही जीवनकी एक बड़ी ही उपयोगी वस्तुकी उपेक्षा करती है। पाश्चात्य संस्कृति सम्पूर्ण अङ्गोंके विकासके नियमका पालन नहीं करती। इसलिये वह अधूरी है। किन्तु भारतीय संस्कृतिके अन्दर शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारकी उन्नतियोंको उचित स्थान मिलता है। भारतके आदर्श अन्य देशोंके आदर्शों से कहीं अधिक पूर्ण और श्रेष्ठ हैं।

भारतीय संस्कृतिकी एक और उत्तम विशेषता जीवनकी सरलता है। उस सरलतामें ही भारतीय जीवनकी सुन्दरता है। आवश्यकताओंको नियमित रखना, उनको बढ़ने न देना भारतीयोंका लक्ष्य है। किन्तु पाश्चात्योंका उद्देश्य है आवश्यकताओंको बढ़ाते जाना। पश्चिममें किसी जातिकी उन्नतिकी जांच उसकी आवश्यकताओंकी संख्या से होती है। जिस जातिकी जितनी अधिक आवश्यकताएँ हैं, वह उतनी ही अधिक उन्नत मानी जाती है। इस उद्देश्यका परिणाम पश्चिमी जातियोंके लिये बड़ा भयङ्कर हो रहा है। उनकी आवश्यकताएँ दिन दूनी रात-चौगुनी रफ्तारसे बढ़ रही हैं। विलासिताकी वृद्धि बढ़ती जा रही है। शारीरिक सौंदर्य जीवनका अंतिम लक्ष्य बनाया

जा रहा है। स्थायी सुखके आधारभूत आत्माको भुलाया जा रहा है। आत्मिक सुखका तिरस्कार किया जा रहा है। इसके परिणाम स्वरूप पाश्चात्य जीवन विषमय, पेंचीला और कृत्रिम बनता जा रहा है। इसके विपरीत भारतीय आदर्श, सरलता-का उपदेश देकर आत्म-चिन्तन और आत्मिक सुखकी प्राप्ति-का आदेश करता है। इससे जीवन शान्तिमय, सुखमय, सरल और स्वाभाविक हो जाता है।

भारतका आदर्श है "जीयो और जीने दो" किंतु पश्चिम में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस" का सिद्धांत ही कार्य कर रहा है। पूंजीपति मजदूरोंको लूटते हैं। बलवान निर्बलोंपर अत्याचार करते हैं। शक्तिशाली जातियां अशक्त जातियोंपर आंख गड़ाये बैठी हैं जब अवसर मिलता है, वे उनका खून चूसने को तत्पर हो जाती है।' प्रत्येक अपने-अपने स्वार्थमें रत है, और इष्ट सिद्धिके लिये एक दूसरेको निगलनेको तैयार बैठा है। यह नजारा उसी "जिसकी लाठी उसकी भैंस" के सिद्धांत का परिणाम है, जो आज योरोपके अन्दर बड़े जोरसे काम कर रहा है। किन्तु "जीयो और जीने दो" के आदर्शमें अमीर-गरीब, पूँजीपति-मजदूर, बलवान और निर्बल सबके लिये स्थान है। भारतके आदर्श के अनुसार धनिकोंका कर्त्तव्य है कि वे गरीबोंको भरपेट भोजन दें। बलवानोंका धर्म है कि वह निर्बलोंकी रक्षा करें। भारतके आदर्शके अनुसार शस्त्रहीन शत्रुपर आक्रमण करना निन्दनीय समझा जाता है किन्तु योरोपके सिद्धान्तके अनुसार जर्मनी जैसे बलशाली देशके लिये निरपराध, छोटेसे बेल्जियमकी तहस नहस कर डालना तनिक भी लज्जाजनक और निन्दनीय नहीं समझा जाता। योरोपका आदर्श है "मेरी चीज तो मेरी है ही,

तुम्हारी चीज भी मेरी है ।" किन्तु भारतका आदर्श कितना ऊँचा, कितना विशाल है—"तुम्हारी चीज तो तुम्हारी ही है, यदि आवश्यकता पड़े तो मेरो चीज भी तुम्हारी हो है" दोनो आदर्शोंमे कितना भेद है। पश्चिमका आदर्श मनुष्यकी लघु वृत्तियोंको लक्ष्यमे रखकर वताया गया है और इसका आधार स्वार्थ है। भारतके आदर्श मनुष्य-समाज ही नहीं, प्राणिमात्रको सम्मुख रखकर वनाये गये हैं और उनका आधार है नि स्वार्थ सेवा।

अतः भारत और पश्चिमकी ससकृतिमे कोई समानता हीं नहीं। दोनो एक दूसरेके विलकुल विपरीत है। दोनोमे जमीन आसमानका अन्तर है। अनेक विदेशी जातियोने भारतीय सभ्यतापर आक्रमण किये और उसकी संसकृतिको नष्ट करनेकी कोशिश की किन्तु उसको सदैव मुँहकी खानी पड़ी। सवसे पहला संघर्ष यूनानी सभ्यतासे हुआ। यद्यपि सिकन्दरने भारत का हिस्सा अपने अधीन कर लिया था, किन्तु वह भी भारतीय आदर्शोंसे प्रभावित हुए विना न रहा। तभीसे दार्शनिको और तात्त्विक विचारक भारतसे लगातार यूनान वुलाये जाने लगे। सिकन्दर स्वयं कई दार्शनिकोको अपने साथ ले गया। यह भारतीय संसकृतिके साथ विदेशी सभ्यताका पहला सघर्ष था।

१९ वीं शताब्दीमे भारतीय सभ्यताको एक गहरी ठेस पहुँची। यह ठेस योरपकी सभ्यताकी थी। योरोपकी सभ्यताका प्रसार भारतमे आंग्ल-जातिके द्वारा विशेष रूपसे हुआ है। अंग-रेजोंने यहाँ देशी भाषाको हटाकर विदेशी भाषाको शिक्षाका माध्यम वनाया। शिक्षाका ढग विदेशी हो गया। देशके प्राचीन गौरवको लुप्त करनेके लिए घृणित और कुत्सित साधनो-का प्रयोग किया गया। देशके आदर्शों और देशके इतिहासके-

भद्दे चित्र खींचे गये, ताकि भारतवासियोंके हृदयोंसे जातीयताके भाव उठ जायँ। जातीयता और स्वदेश-प्रेमके लुप्त हो जानेपर कौन देश अपनी संस्कृतिको बनाये रख सकता है।

इस समय देशमें दो महान शक्तियोंका द्वन्द हो रहा है। एक है योरपकी सभ्यता और दूसरी भारतीय सभ्यता। भारतीय संस्कृति इस समय खतरेमें है। इसका भविष्य बड़ा ही अंधकार मय प्रतीत हो रहा है। अपनी संस्कृतिकी रक्षा करनेकी आवश्यकता है। इस समय प्राचीन आदर्शों की श्रेष्ठता को पुनः स्थापित करके भारतीयोंमे अपने पूर्व इतिहासके प्रति श्रद्धा और सम्मानके भाव उत्पन्न किये जाने चाहिये। आवश्यकता है कि जातीयता और स्वदेश-प्रेमका फिरसे देश-वासियों-मे अंकुर जमाया जाय। स्वदेशी शिक्षा और मातृभाषा प्रचार पुनः किया जाय। संक्षेपमें, भारतीयोंमें भारतीयताका भाव भरा जाय। इन्हीं उपायोंसे हमें अपनी खोई हुई निधि पुनः प्राप्त हो सकती है।

देशके सौभाग्यसे आज इस प्रकारकी जागृतिका आरम्भ हो गया है। किन्तु यह नवीन जागृति अपने शैशवकालमे ही है। इस देशके निवासियोंको शीघ्र ही अपने अन्दरसे उस विदेशीपनको निकल देना चाहिये, जिसकी गधने उसके नित्य-प्रतिके छोटे छोटे कार्योंको मलिन कर रखा है। अपने देशके अनुकूल रीति रिवाजों, चाल-ढालोंको अपनाकर ही वे सरल, सुन्दर, स्वदेशी जीवनको व्यतीत कर सकते है।

अपनी सभ्यताके पुनरुत्थानके लिये यह परम आवश्यक है कि प्राचीन संस्कृतिको पुनरुज्जीवित किया जाय। भारतको अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिये भी अपनी संस्कृतिको जीवित रखना परम आवश्यक है। भारतकी संसारको तभीतक

जरूरत है, जबतक वह अपनी संस्कृतिको सुरक्षित रख सकता है। असंख्य जातियोंके लिये जो इसके सम्पर्कमें आईं, यह अपरिमित सुख और आत्मिक शान्तिका झरना बनता रहा है। इसके उच्चतम विचार और आदर्श आज भी जगत्‌के आध्यात्मिक जीवनपर शासन कर रहे हैं। अपने दार्शनिक विचारों और उच्च आदर्शोंके बलपर ही भारत जगद्गुरु बना था। आज भी यदि संसारमें इसकी कोई गणना है तो वह इसलिये नहीं कि यहाँकी जन संख्या सबसे अधिक है या सबसे अधिक अन्न पैदा होता है। बल्कि इसलिये है कि यह गौतम, कणाद, पतंजलि और यास्कको जन्म देनेवाला है और ऐसी निराली, अनुपमेय संस्कृतिका उद्भव स्थान है। इसी कारण आज भारत गिरी अवस्थामें भी अपना मस्तक ऊँचा किये हुए है। अपनी संस्कृतिको लेकर ही यह जीवित रह सकता है और तभीतक विश्वको इसकी जरूरत है। इसलिये संस्कृतिकी रक्षाका प्रश्न भारतके लिये जीवन और मरणका प्रश्न है। इसकी रक्षा करना प्रत्येक भारतीयका प्रधान कर्त्तव्य है।

अभ्यास

(१) सभ्यता और संस्कृतिमें क्या अन्तर है?

(२) भारतीय सभ्यता और पाश्चात्य सभ्यतामें जमीन आसमानका अन्तर है इसे सिद्ध करो?

(३) भारतीय सभ्यताकी विभिन्नता ही उसकी विशेषता है, इस कथनकी पुष्टि करो।

(४) भारतीय सभ्यता और पाश्चात्य सभ्यताका प्रथम संघर्ष कब और किसमें हुआ?

(५) आत्मिक उन्नति और शारीरिक उन्नतिमें क्या अन्तर है? समझाओ।

(६) 'जीयो और जीने दो' तथा "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का प्रयोग उपर्युक्त पाठमें किसके लिये आया है।

(७) भारतको अपना प्राचीन गौरव पुन प्राप्त करनेके लिये क्या करना चाहिये ?

(८) पाश्चात्य देशोंमें केवल शरीरिक उन्नति प्रमुख है किन्तु भारतमें आध्यात्मिक। समझाओ ?

(९) पर्यायवाची शब्द दो—

सभ्यता, सस्कृति, पारलौकिक।

१३—छवि

लेखक—ठाकुर गोपालशरण सिंह

(आपका जन्म पौष शुक्ल १९४८ स० मे हुआ था। आप रीवा अन्तर्गत नईगढीके सुप्रतिष्ठित इलाकेदार हैं। सस्कृत और अंग्रेजीका भी आपको अच्छा ज्ञान है। आप एक अच्छे कवि, विद्या व्यसनी, उदारमना और सहृदय है। स० १९८२ मे आप अखिल भारतवर्षीय कवि सम्मेलनके सभापति हुए थे। आपकी अधिकाश कविताएँ ईश्वर सम्बन्धिनी हुआ करती हैं। हिन्दी-ससारको आपसे वडी वडी आशाए हैं।)

(१)

मंजुल मयंकमे, मयंक मुखी आननमे
वैसी निष्कलक कान्ति देती न दिखाई है।
दृग झप जाते देख पाते हम कैसे उसे,
ऐसी प्रभा किसने प्रभाकरमे पाई है ?
न्यारी तीन लोकसे है प्यारी सुखकारी भारी,
सारी मनोहारी छटा उसमे समाई है।

जिसको विलोक फीकी शरद्‌जुन्हाई होती,
वह मन भाई छवि किसको न भाई है ?

(२)

नित्य नई शोभा दिखलाती मदमाती वह,
किसमें सलोनी सुघराई कहो ऐसी है ?
केतकीकी कुन्दकी कदम्बकी कथा है कौन,
कल्पलतिकामें कहाँ कान्ति उस जैसी है ?
रतिमें रमामें रमणीयता कहाँ है वैसी ?
कनक-लतामें कमनीयता न वैसी है।
छहर छहर छहराती है छवीली छटा,
अहा ! वह सुघर सजीली छवि कैसी है ?

(३)

सुषमा उसीकी अवलोकके सुधाकरमें,
रूप-सुधा पीकर चकोर न अघाते हैं।
घनकी घटामें नव निरख उसीकी छटा,
मंजुल मयूर होते मोद मद माते हैं।
फूलोंमें उसीकी शोभा देखके मिलिन्द-वृन्द,
फूले न समाते "गुन-गुन" गुन गाते हैं।
दीप्यमान दीपकमें देख वही छवि बाँकी,
प्रेमसे प्रफुल्लित पतंग जल जाते हैं।

(४)

उसको विलोक दामिनी है छिप जाती शीघ्र,
अति मन भावनी भी भामिनी लजाती है।
उसके समीप दीपमालिका न भाती जरा,
मंजुमणि-मालिका भी नेक न सुहाती है॥

निज हीनता मोतियोंसे सही जाती नहीं,
उनकी इसीसे छिद जाती क्यों न छाती है ?
वह छवि देख-देख दृष्टि तृप्ति पाती नहीं,
मानों स्वयं प्रेमवश उसमें समाती है ॥

(५)

कंज-कलिकामें न मयंककी मनोज्ञता है,
कोमलता कंजकी मयंक ने न पाई है,
चम्पक-कलीमें न सुवर्ण की सुवर्णता है,
चम्पककी चारुता सुवर्णमें न आई है।
रत्नकी रुचिरतामें, मणिकी मंजुलतामें,
एक दूसरेकी आभा देती न दिखाई है।
सबकी निकाई सुघराई मोददायी महा,
ललित लुनाई उस छविमें समाई है ॥

(६)

तेजधारियोंमें है कृशानुकाही मान बड़ा,
किन्तु भानु सबसे महान तेजवान है।
पादपोंमें पारिजात पर्वतोंमें हिमवान,
नदियोंमें जाह्नवी मनोज्ञताकी खान है।
मोर-सा मनोहर न कोई खग रूपवान,
फूल कौन दूसरा गुलाबके समान है ?
यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके,
किन्तु उस छवि-सा न कोई छविमान है ॥

(७)

वन-उपवनमें, सरोजमें, सरोवरमें
सुमन-सुमनमें उसीकी सुघराई है।

चम्पक-चमेलियोंमे, नवल नवेलियोमे
ललित लताओंमे भी उसकी लुनाई है ॥
रंग-रंगके विहङ्गमोमे वही पाई जाती,
वही कान्ति-पुञ्ज कुज-कुजमे समाई है ॥
जहाँ देखो वहाँ वही छवि दिखलाई देती,
उरमे समाई तथा लोचनोमे छाई है ॥

अभ्यास

(१) वह किसकी छवि है जिसका वर्णन कवि इस पद्यमे करता है ?

(२) इस अनोखी छविकी कान्ति ससारके समस्त लावण्यमे वर्त्तमान है। कैसे ?

(३) शब्दार्थ बताओ —
निकाई, मयङ्क, जुन्हाई, कनकलता, मजुल, पतङ्ग, सुघराई, कृशानु, छवि।

(४) भावार्थ बताओ —
कजकलिका समाई है।

(५) इसके भावको बताओ :—
जहा देखो ,.. . .छाई है।

—०—

१४—गोविन्द

[सम्पादक—बाबू हनुमान प्रसाद पोद्दार]

(आप कल्याण नामक हिन्दी मासिक-पत्रके सम्पादक हैं। आपके लेख भगवत् भक्ति-रस-सिक्त और भावयुक्त होते हैं। प्रस्तुत कहानी 'गोविन्द' आपहीकी सम्पादित-पुस्तक 'भक्त-बालक' से ली गई है।)

गोवर्धन बड़ा सुन्दर गाँव है। गाँवमे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी ही बस्ती अधिक है। गाँवके बीचमे एक मन्दिर है,

जिसमें श्रीनाथजी महाराजकी बड़ी ही सुन्दर मूर्ति विराजमान है। उनके चरणोंमें नूपुर, गलेमें मनोहर वनमाला और मस्तकपर मोर मुकुट शोभित हो रहा है। घुँघराले बाल हैं। नेत्रोंकी बनावट मनोहारिणी है और पीताम्बर पहने हुए हैं। मूर्तिमें इतनी सुन्दरता है कि देखनेवालोंका मनही नहीं भरता। मंदिरके पास ही एक गरीब ब्राह्मणका घर था। ब्राह्मण था गरीब, परंतु उसका हृदय भगवत्-भक्तिके रङ्गमें रङ्गा हुआ था। ब्राह्मणी भी अपने पति और पतिके भी परम पति परमात्माके प्रेममें रत थी। उसका स्वभाव बड़ा ही सरल और मिलनसार था, कभी किसीने उसके मुखसे कड़ा शब्द नहीं सुना। पिता-माताके अनुसार ही प्रायः पुत्रका स्वभाव हुआ करता है। इसी न्यायसे ब्राह्मण-दम्पतिका पुत्र गोविन्द भी बड़े सुन्दर स्वभावका बालक था। उसकी उम्र दस वर्षकी थी। गोविन्दके शरीरकी बनावट इतनी सुन्दर थी कि लोग उसे कामदेवका अवतार कहनेमें भी नहीं सकुचाते थे।

गोविन्द गांवके बाहर अपने साथी सदानंद और रामदासके साथ खेला करता था। एक दिन खेलते-खेलते संध्या हो गयी। गोविन्द घर लौट रहा था तो उसने मन्दिरमें आरतीका शब्द सुना। शंख, घण्टा, घड़ियाल और झांझकी आवाज सुनकर गोविन्दकी भी मन्दिरमें जाकर तमाशा देखनेकी इच्छा हुई और उसी क्षण वह दौड़कर नाथजीकी आरती देखनेके लिये मन्दिरमें चला गया। नाथजीके दर्शनकर बालकका मन उन्हींमें रम गया। गोविन्द इस बातको नहीं समझ सका कि यह कोई पाषाणकी मूर्ति है। उसने प्रत्यक्ष देखा कि एक जीता जागता मनोहर बालक खड़ा हँस रहा है। गोविन्द, नाथजीकी मधुर मुसकानपर मोहित हो गया। उसने सोचा "यदि यह बालक

मेरा मित्र बन जाय और मेरे साथ खेले तो बड़ा आनन्द हो।" इतनेमें आरती समाप्त हो गई, लोग अपने-अपने घर चले गये। पुजारी भी मन्दिर बन्द करके चले गये। एक गोविन्द रह गया, जो मन्दिरके बाहर अधेरेमें खड़ा नाथजीकी बाट देखता था। गोविंदने जब चारो ओर देखकर यह जान लिया कि कहीं कोई नहीं है, तब उसने किवाड़ोंके छेदसे अंदरकी ओर झांक-कर अकेले खड़े हुए श्रीनाथजीको हृदयकी बड़ी गहरी आवाज-से गद्गद् कण्ठ हो प्रेमपूर्वक पुकारकर कहा, "नाथजी! भैया क्या तुम मेरे साथ नहीं खेलोगे? मेरा मन तुम्हारे साथ खेलनेके लिये बहुत छटपटा रहा है। भाई आओ, देखो कैसी चाँदनी रात है, चलो दोनो मिलकर मैदानमें गुल्ली डंडा खेलें। मैं सच कहता हूं, भाई! तुमसे कभी झगड़ा या मारपीट नहीं करूँगा।"

सरल हृदय बालकके अंतःकरणपर आरतीके समय जो प्रभाव पडा, उससे वह उन्मत्त हो गया। परमात्माके मधुर और अनन्त प्रेमकी अमृतमयी मलय वायुसे गोविंद प्रेम-विभोर होकर मंदिरके अंदर खड़े हुए उस भक्त-प्राण धन गोविन्दको रो रोकर पुकारने लगा। बालकके अश्रु-सिक्त शब्दों-ने बड़ा काम किया। भक्तके प्रेमावेशने भगवान्‌को खींच लिया। गोविन्दने सुना, मानो अन्दरसे आवाज आती है—"भाई चलो आता हू, हम दोनो खेलेंगे।"

सरल बालकका मधुर-प्रेम भगवानको बहुत शीघ्र खींचता है। बालक ध्रुवके लिये उन्हें चतुर्भुजधारी होकर वनमें जाना पड़ा। भक्तप्रह्लादके लिये अनोखा नरसिंह वेष धारण किया और ब्रज बालकोंके साथ तो आप गौ चराते हुए वन-वन घूमे, आज गोविन्दकी मतवाली पुकार सुनकर उसके साथ खेलनेके

लिये मन्दिरके बाहर चले आये, धन्य प्रभु ! न मालूम तुम मायाके साथ रमकर कितने खेल खेलते हो। तुम्हारा मर्म कौन जान सकता है ? मामूली मायावीके खेलसे ही लोग भ्रममें पड़ जाते है फिर तुम तो मायावियोके सरदार ठहरे ।

नाथजी हंसते हुए गोविन्दके पास आकर खड़े हो गये। गोविन्दने वडे प्रेमसे उनका हाथ पकड़ लिया। आज गोविन्दके आनन्दका ठिकाना नहीं है, वह कभी नाथजीके मुखकमलको देखकर मतवाला होता है, तो कभी उनके कोमल-कर-कमलो-का स्पर्श कर अपनेको धन्य मानता है। कभी उनके नुकीले नेत्रोंको निहारकर मोहित होता है, तो कभी उनके सुरीले शब्दो-को सुनकर फिर सुनना चाहता है। गोविन्दके हृदयमें आनंद समाता नहीं ! बात भी ऐसी ही है। जगतका समस्त सौंदर्य जिसकी सौंदर्य-राशिका एक तुच्छ अंश है, उस अनन्त और असीम रूप राशिको प्रत्यक्ष प्राप्त कर ऐसा कौन है जो मुग्ध न हो ?

नये मित्रको साथ लेकर गोविन्द गॉवके बाहर आया। चंद्रमाकी चॉदनी चारो ओर छिटक रही थी, प्रियतमकी प्राप्ति से सरोवरोंमें कुमुदिनी हँस रही थी। ऐसी मनोहर रात्रिमे गोविन्द, नाथजीको पाकर अपने घर-बार पिता-माता और नींद-भूखको सर्वथा भूल गया। दोनों मित्र बड़े प्रेमसे तरह-तरहके खेल खेलने लगे।

गोविन्दने कहा था कि झगड़ा या मारपीट नहीं करूँगा, परन्तु विनोदप्रिय नाथजीकी मायासे मोहित होकर वह इस बातको भूल गया, खेलते-खेलते किसी बातको लेकर दोनो मित्र लड़ पड़े। गोविदने क्रोधमें आकर नाथजीके गालपर एक थप्पड़ जमा दिया और बोला कि "फिर कभी मुझे खिझाया

तो याद रखना, मारते-मारते पीठ लाल कर दूंगा। सूर्य-चन्द्र, अनल-अनिल जिसके भयसे अपने-अपने काममें लग रहे हैं, स्वयं देवराज इन्द्र जिसके भयसे समयपर वृष्टि करनेके लिये बाध्य होते है, और भयाधिपति यमराज जिसके भयसे पापियो-को भय पहुँचानेमें व्यस्त है, वही त्रिभुवन नाथ आज नन्हेसे बालक भक्तके साथ खेलते हुए उसका थप्पड़ खाकर भी कुछ नहीं बोलते। धन्य है।

नाथजी रोने लगे और बोले, "भाई गोविंद! तुमने कहा था न कि मारूंगा नहीं, फिर मुझे क्यों मारा!" नाथजीकी इस बातको सुनकर और उनको रोते देखकर गोविंदका कलेजा भर आया उसने दौड़कर नाथजीके आंसू पोंछ उन्हे अपने गले लगा लिया और बोला, "भाई! रो मत, तू मुझे बड़ा ही प्यारा लगता है, तेरी आखोंमें आंसू देखते ही मेरा कलेजा फटता है।" दोनों फिर खेलने लगे। रात अधिक हो गई। भगवानने यह सोचकर कि इसके माता पिता बड़े चिंतित होंगे, अपनी मायासे गोविंदके हृदयमें घर जानेके लिये प्रेरणा की। गोविंदने कहा, "नाथजी! बड़ी देर हो गई है, मैं घर जाता हूं, अब कल फिर खेलेंगे।" नाथजीने अनुमति दी। गोविंद घर चला गया और अनाथोंके एक मात्र नाथजी अपने मन्दिरमें चले गये।

प्रतिदिन इसी प्रकार खेल होने लगा। गोविंद इस नयन मन-मोहन नवीन मित्रको पाकर पुराने दोनों मित्रोंको भूल गया। एक दिन श्रीनाथजी महाराज खेलते खेलते गोविंदको 'दॉव न देकर भागे।' गोविंद भी पीछे-पीछे दौड़ा। नाथजी महा-राज मन्दिरमें जाकर घुस गये। मन्दिरका द्वार बंद था, अत-एव गोविंद अंदर नहीं जा सका, नाथजीका अन्याय समझ-कर वह मन्दिरके बाहर खड़ा होकर उन्हें प्रणय कोपसे खरी-

खोटी सुनाने लगा। भक्तमालके रचयिता रीवाँ-नरेश रघुराजसिंहजी लिखते हैं:—

'भगि मन्दिर भीतर कृष्ण गये तब गोविंद भीतर जान लगो।
जब पण्डन मारि निकासि दियो, तब बाहरही अति कोप जगो॥
महि ठोकत डण्ड उचारत गारि दे, तू कढ़ि है कबलो न भगो।
इत बैठ रहौंगो मै तेरे लिये, नहि दाँव दियो अहै पूरो ठगो॥'

मन्दिर खुलते ही गोविन्द अन्दर घुस गया और डण्डेसे नाथजीकी मूर्तिको पीटकर बोला कि 'फिर कभी भागोगे?' पुजारियोंने हा! हा! करके गोविंद को पकड़ा और मार-पीटकर मन्दिरके बाहर निकाल दिया, इससे उसका प्रेम-कोप और भी बढ़ा और वह कहने लगा, नाथजी! तैंने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है, दाव न देकर भाग आया और अब मुझे अपने आदमियोंसे मरवाकर बाहर निकलवा दिया, जबतक तुमसे इसका बदला न लूंगा, तबतक पानी भी न पिऊँगा। यों कहकर गोविंद रूठकर चला गया और जाकर गोविंद-कुण्डपर बैठ गया। इधर मन्दिरमें भोग तैयार होनेपर पुजारीको प्रत्यादेश हुआ कि "तुम लोगोंने मेरे जिस भक्तको मारकर बाहर निकाल दिया है, वह जबतक नहीं आवेगा तबतक मेरा भोग नहीं लग सकता, उसके अंगपर जो मार पड़ी है वह सब मेरे लगी है।" पुजारी को क्या पता था कि भक्त और भक्त-वत्सल अभिन्न होते हैं। खैर। पुजारीजी बड़े हैरान हुए दौड़े, और खोजते खोजते कुण्डपर गोविंदको पाकर कहने लगे, "भाई चलो नाथजीने तुम्हे बुलाया है, वे तुमसे हार मानते हैं और फिर तुम्हारे साथ खेलनेका वादा करते हैं।" ब्राह्मणके वचन सुनकर गोविंदने कहा, "जाता तो नहीं, वही मेरे पास आता, और जब मैं उसे खूब पीटता, तभी वह सीधी राहपर आता; पर

अब जबकि उसने हार मान ली है, तब तो चलो, चलता हूं।"

यों कहकर गोविन्द मन्दिरमें गया और विजय-गर्वसे हंसता हुआ बोला—"क्यों नाथजी ! फिर कभी करोगे ऐसी चातुरी ? अच्छा हुआ जो तुमने हार मानकर मुझे बुला लिया, नहीं तो ऐसा करता जो जन्मभर याद रखते।" गोविंदने ये बातें कह तो दीं परन्तु जब नाथजीका मन उदास देखा तो उसके सरल हृदयमें बड़ी वेदना हुई। वह बोला—"भाई ! तुमने अभीतक भोग क्यों नहीं लगाया। तुम्हारे मुखको उदास देखकर मेरे प्राण रोते हैं, भाई ! फिर कभी तुम्हें न मारूँगा, तुम्हारी उदासी मुझसे नहीं सही जाती। मैं तुमसे अब नहीं रूठूंगा, तुम राजी हो जाओ और भोग लगाओ।"

मन्दिरके द्वार बन्द हो गये। नाथजी प्रत्यक्ष होकर बोले, "भाई ! तुम भी तो भूखे हो ! आओ, दोनों मिलकर खायँ।" नाथजीका प्रसन्न-मुख देखकर गोविन्दका मन-सरोज भी खिल उठा। दोनों हँसने लगे। आनन्दकी ध्वनिसे मन्दिर भर गया। गोविन्द, गोविन्दके हाथों बिक गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय !

अभ्यास

(१) भगवान् भक्ताधीन हैं, इस कहानीसे सिद्ध करो ?

(२) गोविन्दका मन भगवान्की ओर कैसे झुका ?

(३) मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा।
किये कोटि, तप, योग विरागा ॥
गोस्वामी तुलसीदासकी उपर्युक्त चौपाई और इस कहानीमें क्या समानता है ?

(४) भगवान्के भक्तोंका अपमान स्वयं ईश्वरका अपमान है। कैसे ? इस कहानीसे सिद्ध करो ?

(५) भक्तके सात्विक प्रेमके सम्मुख भगवान् अपने मान और अपमान का ध्यान नहीं रखते समझाओ ?

(६) इस कहानीसे क्या शिक्षा मिलती है ?

(७) इस कहानीको सक्षेपमें वर्णन करो ?

१५—भक्तकी भावना

[लै०—पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही']

[जन्म श्रावण शुक्ल १३ स० १९४० वि० । जन्मभूमि और विकास स्थान हड़हा जिला उनाव है। अर्वाचीन खडी बोलीके कवियोंमे आपका स्थान बहुत उच्च है। हिन्दी-साहित्यमे आपकी श्रेणीके केवल इने गिने दो चार कवि है। आप सस्कृतके कुशल ज्ञाता तथा उर्दूके भी अच्छे कवि हैं। १५-१६ वर्षकी अवस्थासे ही आपका अध्यापक-जीवन आरम्भ हुआ और आपका यह जीवन सफल रहा। आप सम्प्रति-कानपुरमे ही रहकर आनन्दमय साहित्यिक जीवन व्यतीत कर रहे है।]

(१)

तू है गगन-विस्तीर्ण तो मै एक तारा क्षुद्र हूँ,
तू है महासागर अगम मै एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानद तुल्य तो मै एक बूँद समान हूँ,
तू है मनोहर गीत तो मै एक उसकी तान हूँ॥

(२)

तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूँ,
तू है अगर दक्षिण पवन तो मै कुसुमकी धूल हूँ।
तू सरोवर अमल तो मै एक उसका मीन हूँ,
तू है पिता तो पुत्र मै तव अङ्कमे आसीन हूँ॥

(३)

तू अगर सर्वाधार है तो एक मैं आधेय हूँ,
आश्रय मुझे है एक तेरा, श्रेय या आश्रेय हूँ ।
तू है अगर सर्वेश तो मैं एक तेरा दास हूँ,
तुझको नहीं मैं भूलता हूँ दूर हूँ या पास हूँ ॥

(४)

तू है पतित पावन प्रकट तो मै पतित मशहूर हूँ,
छलसे मुझे यदि हैं घृणा, तो मै कपटसे दूर हूँ ।
है भक्तिकी यदि भूख तुझको, तो मुझे तव भक्ति है,
अति प्रेम है तेरे पदोंमें, प्रेम है, आसक्ति है ॥

(५)

तू है दयाका सिन्धु तो मैं भी दयाका पात्र हूँ,
करुणेश तू है, चाहता मै नाथ करुणा-पात्र हूँ ।
तू दीनबन्धु प्रसिद्ध है, मैं दीनसे भी दीन हूँ,
तू नाथ ! नाथ अनाथका असहाय मैं प्रभु-हीन हूँ ॥

(६)

तव चरण अशरण-शरण हैं मुझको शरणकी चाह है,
तू शीतकर है दग्धको, मेरे हृदयमें दाह है ।
तू है शरद्-राका-शशी, मम चित चारु चकोर है,
तव ओर तजकर देखता वह औरकी कब ओर है ॥

(७)

हृदयेश ! अब तेरे लिये, है हृदय व्याकुल हो रहा,
आ, आ, इधर आ शीघ्र आ, यह शोर यह गुल हो रहा ।
यह चित्त-चातक है तृषित, कर शान्त करुणा-वारिसे,
घनश्याम ! तेरी रट लगी आठों पहर है अब इसे ॥

(८)

तू जानता मनकी दशा, रखता न तुमसे बीच हूँ,
जो कुछ कि हूं तेरा किया हूँ उच्च हूँ या नीच हूँ।
अपना मुझे अपना समझ तपना न अब मुझको पड़े,
तजकर तुझे यह दास जाकर द्वार अब किसके अड़े॥

(६)

तू है दिवाकर तो कमल मैं, जलद तू मैं मोर हूँ,
सब भावनाये छोड़कर, अब कर रहा यह शोर हूँ।
मुझसे समा जा इस तरह तन प्राणका जो तौर है,
जिसमें न फिर कोई कहे मैं और हूँ तू और है॥

अभ्यास

(१) ईश्वर और ईश्वर-भक्तमें क्या सम्बन्ध है? इसे इस पद्य द्वारा समझाओ।
(२) तुम्हारे हृदयमें इस पाठको पढकर क्या भाव उत्पन्न होते हैं?
(३) तू है शरद .कब ओर है। इस पदका अन्वय करो।
(४) यह चित्त चातक...अब इसे। इसमें उपमान उपमेय समझाओ और इस पद्यका भावार्थ भी बतलाओ?
(५) अशरण-शरण, करुणा-वारि शरद-राका-शशिमें समास बताओ?
(६) सुखद, अनाथ, सर्वाधार, आश्रेय, हृदयेशमें सन्धि-विच्छेद करो?
(७) इस पद्यका असली ध्येय क्या है? बताओ।

१६—हिन्दी-साहित्यमें नाटक

['सुधा' से सकलित]

नाटकका भविष्य क्या होगा और नाटकका भविष्य क्या होना चाहिये, इस प्रश्नपर हिंदी-साहित्यिकोंने सर्वथा मौन धारण कर रखा है। कई कला प्रिय कला-विज्ञान-विशारद

सज्जनोसे इस विषयपर वार्तालाप हुआ। मेरे आश्चर्य और दुःखकी कोई सीमा न रही, जब उनमेंसे कुछ सज्जनोंने यह सम्मति प्रकट की कि 'सिनेमा' रूपी राहु नाटक-रूपी ग्रहको ग्रस लेगा अथवा टाकीज़-रूपी नाग नाटकको डस लेगा।

मेरा तो यह विचार है कि 'सिनेमा' अथवा 'टाकीज़' 'नाटक' को कोई क्षति नहीं पहुँचा सकते। ऋषियोंकी यह पवित्र विद्या सदैव अपना सिर ऊँचा किये हुए रहेगी। परन्तु जो उदासीनता हिन्दी-साहित्य सेवियोने 'नाटक' के प्रति प्रदर्शित की है, उससे यही अनुमान होता है कि निकटवर्ती कालने नाट्य-विद्या तथा नाट्य-कलाका क्षय होने लगेगा।

हिन्दी-साहित्यको उच्च तथा उत्तम बनानेका उद्योग किया गया। उदीयमान उत्साही लेखकोंने अपनी लेखनीसे उपन्यास लिखकर हिन्दी साहित्यका भाण्डार भरना प्रारम्भ किया। कवियोने काव्य-ग्रन्थो द्वारा हिन्दी-साहित्यकी श्री-वृद्धिकी। आधुनिक हिन्दी-साहित्य, यदि संसारकी भाषाओंमे नहीं, तो भारतीय भाषाओंके साहित्यमे, उच्च श्रेणीमे गण्य अवश्य है। पुस्तकोंकी छपाई और सफाई, सजावट और बनावट, सर्वथा उत्तम तथा प्रशंसनीय है, पर क्या केवल इन बातोसे हिन्दी भाषाका साहित्य सर्वांग पूर्ण हो गया। मेरा उत्तर नकारमे है, क्योंकि नाटकके बिना किसी भाषाका साहित्य सर्वाङ्गपूर्ण नहीं हो सकता। अतः हिन्दीका साहित्य अभी पूर्णाङ्ग नहीं है।

एक समय था कि रंग मञ्चोपर उर्दू-नाटकोंके अभिनयकी धूम मची हुई थी—इन्द्र सभा तथा गुलबकावलीका जो आदर तत्कालीन नाट्य-शालाओंमे था, वह शायद भोजकालमें भी कालिदास तथा भवभूतिके नाटकोको प्राप्त न हुआ होगा। ९० नारायण प्रसाद बेताबने सबसे प्रथम हिन्दी-उर्दू मिश्रित

भापामें नाटक लिखकर अभिनय कराया। फिर क्या था ? समालोचक महोदय अपनी कुम्भकर्णी निद्रासे जागकर अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रहार करने लगे। कोई कहता था, हिन्दी भापाकी नाक कट गई। कोई कहता था, हिन्दीके नामपर लोगोंको लूटनेका आयोजन है। तब पंडितजीके इस उत्तरसे—

"मैंने साहित्यमें हिन्दीको है बदनाम किया,
फिर भी यह सोचके खुश हूँ कि कोई काम किया।"

समालोचक महाशयोंको कुछ शान्ति मिली। अन्य उत्साही लेखकोंको कुछ आगे बढ़नेका सहारा मिला।

नाटकके बिना कोई साहित्य-पूर्ण नहीं होता। अंगरेजी तथा ससकृतसेसे शेक्सपियर तथा कालिदास और भवभूतिके नाटकोंको पृथक् कर दीजिए, तुरन्त इन साहित्योंकी कांति फीकी पड़ जायगी। इसका कारण है नाटकमें "साहित्य संगीत; कलाका समावेश" जिनके बिना मनुष्य पुच्छ–विषाण–हीन पशु ज्ञात होता है, ये तीनो बातें न आपको 'उपन्यास' में मिल सकती हैं; न 'काव्य-ग्रन्थों' में न 'सिनेमा' में न 'टाकीज' में'। उपन्यास पढ़ते समय भाँति-भाँतिकी घटनाएँ आपके सम्मुख आवेंगी, अनेकानेक प्रकारके भाव आपको ज्ञात हो जायंगे। आप उपन्यासमें लवलीन भी हो जायंगे, ओत-प्रोत भी हो जायंगे । काव्य ग्रन्थ पढ़कर आपको कविताका आनंद आवेगा, आप काव्य-सागरकी लहरोंके साथ विहार करने लगेंगे। उस काव्य सागरमें आपको नाना प्रकारके सुरम्य रत्न दृष्टि-गोचर होंगे जिनपर आप मोहित हो जायंगे। सिनेमाके दृश्य देखकर आप आश्चर्य–सागरमें डूब जायंगे। टाकीजमें भी आपको 'सिनेमा संगीतका' आनन्द आवेगा। परंतु एक अच्छे नाटकके देखनेमें आपको ये सब आनन्द एक साथ प्राप्त हो

जायँगे। चित्ताकर्षण करनेवाले मनोहर पोशाके, रमणीक तथा आनन्ददायक दृश्य, हृदयपर सच्चा भाव अङ्कित करनेवाले हाव भाव, संगीतमें गान, नृत्य, वीणा, मृदङ्ग तथा अन्य वाद्यों-का मनोहर शब्द, इन सब बातोका आनन्द आपको एक अच्छे नाटकमे ही मिल सकता है।

नाटक ही एक ऐसा कमल है, जिसके मधुर परागको पान करनेके लिये कवि, उपन्यासकार, गाने बजानेवाले, चित्रकला प्रवीण तथा अन्य कलाविद् मनुष्य भ्रमररूप धारण करके अपनी गुनगुनाहटसे दर्शकोका मन मुग्ध करते हुए पाये जाते हैं।

आज भी भारतीय रंग-मञ्चपर हिंदी नाटकोकी धूम मची हुई है। हिंदीमे अब भी ऐसे नाटक लिखे जा चुके हैं जिन्हे बारंबार देखनेकी जनताको प्रबल उत्कण्ठा रहती है। परन्तु ऐसे नाटक उँगलियोंपर ही गिनने भरके हैं। हमे इतनेसे ही संतोष नहीं होना चाहिये, किन्तु नाटककी तरक्की करनेका उपाय सोचना चाहिये।

हमारे समालोचक महाशय नाट्यकारोसे अप्रसन्न है। मैं मान सकता हू कि हिन्दी-साहित्याकाशपर अभीतक कोई नाटक शुक्र-ग्रह या ध्रुव-नक्षत्रकी नांई चमकने योग्य नहीं हुआ फिर भी जो हैं, उनको अपनाना हमारा कर्त्तव्य है। स्टेजपर खेले जानेवाले नाटकोमे साहित्यकी पूर्ण सामग्री नहीं मिल सकती। अत साहित्यकी दृष्टिसे उनकी समालोचना करना भी व्यर्थ है। यह अवश्य देखना चाहिये कि अमुक नाटकसे समाज का सुधार होगा या नहीं। यदि समाजको हानि पहुँचनेकी संभा-वना हो, तो उस नाटकके विरुद्ध घोर आन्दोलन करना चाहिये।

नाटकमे भाग लेना हानिकारक नहीं है। नाटक प्राचीन

समयहीसे प्रचलित है। महर्षि वशिष्ठने भगवान् रामचन्द्रके लड़कोंसे सीता वनवास नाटकका अभिनय कराया था। नाटक ऋषियों और देवताओंकी विद्या है। इसकी उन्नति करना हमारा कर्त्तव्य है।

उदीयमान उत्साही लेखकगण आगे आवें और अपनी लेखनीसे साहित्यके इस अंगको पूर्ण करें। कलाप्रिय युवकगण अग्रसर होकर संगीत तथा अभिनय-कलाको उन्नति प्रदान करें। तभी आशा की जा सकती है कि नाटकका भविष्य उज्ज्वल होगा, हिंदी-साहित्य सर्वथा सर्वांग-पूर्ण बनेगा।

अभ्यास

(१) नाटक और हिन्दीके काव्य-ग्रन्थोंमे क्या अन्तर है?

(२) नाटकके विना कोई साहित्य पूर्ण नहीं कहा जा सकता। सिद्ध करो?

(३) सिनेमा, टाकीज और नाटकमें क्या अन्तर है? सोदाहरण समझाओ?

(४) नाटकका प्रभाव विज्ञ-दर्शकोंके मस्तिष्कपर अवश्य पड़ता है। कैसे?

(५) नाटक, सिनेमा टाकीज आदि भारतको क्या विलासिताकी ओर ले जा रहे हैं?

(६) शब्दार्थ बताओः—

प्रदर्शित, उदीयमान, तत्कालीन, समालोचना, पुच्छ विषाण-हीन ।

०   ०—

१७—भ्रातृ-प्रेम

[ले०—गोस्वामी तुलसीदास]

(गोस्वामी तुलसीदासका जन्म १५८९ विक्रमीमें तारी गावमें हुआ, जो वादा जिलेमें राजापुरसे ५-६ कोसकी दूरीपर है। आप सरयूपारीण ब्राह्मण थे। आपका नाम पहले रामबोला था। आपके पिताका नाम आत्माराम और माताका हुलसी था। नरहरि स्वामी आपके गुरु थे। जबतक यह ससार-प्रवाह प्रचलित है तबतक गोस्वामी तुलसीदासजीकी विमल कीर्ति जो इन्होंने धर्म, समाज, राजनीति इत्यादि-के निमित्त की, सतत अमर रहेगी। आप वि० स० १६८० में अपनी मानवी लीलाको समाप्त कर सुरधाम सिधारे।)

चौपाई

समाचार जब लछिमन पाये। व्याकुल विलख बदन उठि धाये ॥
कप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल ते काढ़े ॥
सोच हृदय विधिका होनिहारा। सब सुख सुकृतु सिरान हमारा ॥
मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहि साथा ॥
राम विलोकि बन्धु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे ॥
बोले वचन राम नयनागर। सील-सनेह-सरल सुख सागर ॥
तात प्रेमवस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू ॥

दोहा—मातु-पिता-गुरुस्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, नतरु जनम जग जाय ॥

चौपाई

अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु-पितु-पद-सेवकाई ॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं। राव वृद्ध मम दुख मन माहीं ॥

मै बन जाऊँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि विधि अवध अनाथा॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परइ दुसह दुख भारू॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥
रहहु तात अस नीति बिचारी। सुनत लषन भये व्याकुल भारी॥
सियरे वदन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे॥

दो०—उतर न आवत प्रेमवस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मै स्वामि तुम्ह, तजहु त काह वसाइ॥

चौपाई

माँगहु विदा मातु सन जाई। आवहु वेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुपति बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥
हरषित हृदय मातु पहिं आये। मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाये॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मन रघुनन्दन जानकि साथा॥
पूछे मातु मलिन मन देखी। लषण कही सब कथा विसेखी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥
लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह वस करब अकाजू॥
माँगत विदा समय सकुचाहीं। जाइ संग विधि कहिहि कि नाहीं॥

दो०—समुझि सुमित्रा राम-सिय, रूप सुसील सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाउ॥

चौपाई

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदुबानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू॥
जौ पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बन्धु सुरसाईं। सेइअहिं सकल प्रानकी नाईं॥

राम प्रान प्रिय जीवन जीके। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहिं रामके नाते॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

दो०—भूरि भाग भाजन भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ।
जो तुम्हरे मन छाँड़ि छल, कीन्ह राम पद ठाउँ।

चौपाई

पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई॥
नतरु बाँझ भल बादि बियानी। राम बिमुख सुत तें हित हानी॥
तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
राग रोष इरिषा मद मोहू। जनि सपनेहुं इन्हके बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहं बन सब भांति सुपासू। संग पितु मातु राम सिय जासू॥
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू॥

वशिष्ठ और भरतका संवाद

चौपाई

सु दिन सोधि मुनिवर तब आये। सचिव महाजन सकल बुलाये॥
बैठे राम सभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई॥
भरत बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति-धरम-मय बचन उचारे॥
प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्ह जसि करनी॥
भूप धरम व्रत सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा॥
कहत राम गुन-सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥

बहुरि लखन-सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी ॥

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ ॥

चौपाई

अस बिचारि केहि देइअ दोपू। व्यरथ काहि पर कीजिय रोपू॥
तात बिचार करहु मन माहीं। सोच जोग दसरथ नृप नाहीं॥
सोचिय विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धरम विपय लवलीना॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
सोचिय बयस कृपिन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिय सूद्र विप्र अवमानी। मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी॥
सोचिय पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिय बटु निज ब्रत परिहरई। जो नहि गुरु आयसु अनुसरई॥

दो०—सोचिय गृही जो मोह वस, करइ करम पथ त्याग।
सोचिय जती प्रपञ्चरत, बिगत विवेक बिराग॥

चौपाई

वैखानस सोइ सोचन जोगू। तप बिहाइ जेहिं भावइ भोगू॥
सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी। जननि-जनक-गुरु-बंधु-बिरोधी॥
सब विधि सोचिय पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबहीं विधि सोई। जो न छाड़ि छल हरिजन होई॥
सोचनीय नहि कोसल राऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
बिधि हरिहर सुरपति दिसि नाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा॥

दो०—अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहि अमरपति ऐन॥

चौपाई

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोक परिहरहू॥

सुरपुर नृप पाइहिं परतोषू। तुम कहँ सुकृत सुजसनहि दोषू॥
वेद विदित संमत सवही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥
करहु राज परिहरहु गलानी। मानहु मोर वचन हित जानी॥
सुनि सुख लहव राम वैदेही। अनुचित कहव न पंडित केही॥
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होहि सुखारी॥
परम तुम्हार राम कर जानहि। सो सव विधि तुम सन भल मानिहिं॥
सौंपउ राज रामके आये। सेवा करेहु सनेह सुहाये॥

सोरठा—भरत कमल कर जोरि, धीर-धुरन्धर धीर धरि।
वचन अमिय जनु वोरि, देत उचित उत्तर सवहि॥

चौपाई

मोहिं उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव समत सवहीका॥
मातु उचित धनि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥
गुरु-पितु-मातु-सुवामी हितवानी। सुनिमनमुदित करिय भलजानी॥
उचित कि अनुचित किये विचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू॥
तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर हित होई॥
जद्यपि यह समुझत हउँ नीके। तदपि होत परितोप न जीके॥
अव तुम विनय मोरि सुन लेहू। मोहिं अनुहरत सिखावन देहू॥
उत्तर देउँ छमव अपराधू। दुखित-दोप-गुन गनहिं न साधु॥

दोहा—आपनि दारुन दीनता, कहेउँ सवहिं सिरनाइ।
देखे विन रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ॥

चौपाई

आन उपाय मोहिं नहि सूझा। को जिय कै रघुवर विन वूझा॥
एकहि आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहिं कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सन्मुख मोहिं देखी। छमि सव करिहहि कृपा विसेखी॥
सील सकुचि सुठि सरल सुभाउ। कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ॥

अरिहुँक अनभल कीन्ह न रामा । मैं सिसु सेवक यद्यपि वामा ॥
तुम्ह पै पांच मोर भल मानी । आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहि सुनि विनयमोहि जन जानी । आवहिं बहुरि राम रजधानी ॥

दो०—यद्यपि जनम कुमातु तें, मै सठ सदा सदोस ।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस ॥

अभ्यास

(१) लक्ष्मणजीके भ्रातृ-प्रेमको अपनी भाषामे वर्णन करो ।
(२) सुमित्राने लक्ष्मणको क्या उपदेश दिया ? बतलाओ ।
(३) भरतजीके भ्रातृ-प्रेम और लक्ष्मणजीके भ्रातृ-प्रेमका तुलनात्मक दृष्टिसे विश्लेषण करो ।
(४) वशिष्ठजीने भरतजीसे किन-किन लोगोंको शोचनीय बतलाया है ?
(५) भ्रातृ-प्रेमपर एक निबन्ध तैयार करो ।
(६) उतर न आवत ..... .कहा बसाइका सान्वय अर्थ बतलाओ ।
(७) दुखित दोप-गुन गन, गुरु-पितु-मातु-बन्धु-सुर साईं, स्वारथ रहित, में समास बतलाओ ।
(८) "पापिनि कीन्ह कुदाउ" में कविका संकेत किसकी ओर है ?
(९) यद्यपि जन्म कुमातु ते .. .की पद व्याख्या करो ।
(१०) सुमित्रा एक आदर्श माता थी । इस पाठसे समझाओ ।

१८—क्रोध

[ले०—पं० रामचन्द्र शुक्ल]

(जन्म आश्विन शुक्ल पूर्णिमा सं० १९४१ वि०, निवास स्थान दुर्गाकुण्ड काशी । आप हिन्दी-साहित्यमें अद्वितीय स्थान रखते हैं । आप गद्य और पद्य दोनोंके प्रकाण्ड पण्डित हैं । आप चतुर समालोचक भी हैं । आपने अंग्रेजी भाषामें भी कितने ही विद्वतापूर्ण निबन्ध लिखे हैं ।

हिन्दीमें आपने कोई १५ से अधिककी सख्यामें पुस्तकें रची हैं जो सभी महत्वपूर्ण हैं। आपका साहित्यिक अध्ययन नितान्त अनुभवपूर्ण है। सम्प्रति आप काशी विश्वविद्यालयमे हिन्दीके एक प्रमुख प्रोफेसर हैं।)

क्रोध दु खके कारणके साक्षात्कार व अनुमानसे उत्पन्न होता है। साक्षात्कारके समय दु ख और उसके कारणके सबध का परिज्ञान आवश्यक है। जैसे तीन-चार महीनेके बच्चेको कोई हाथ उठाकर मार दे तो उसने हाथ उठाते तो देखा है पर अपनी पीड़ा और उस हाथ उठानेसे क्या सम्बन्ध है, यह वह नहीं जानता है। अतः वह केवल रोकर अपना दु.खमात्र प्रकट कर देता है। दु खके कारणके साक्षात्कारके निश्चयके विना क्रोधका उदय नहीं हो सकता।

शिशु अपनी माताकी आकृतिसे अभ्यस्त हो ज्योंहीं यह जान जाता है कि दूध इसीसे मिलता है, भूखा होनेपर वह उसकी आहट पा रोनेमे कुछ क्रोधके चिह्न दिखाने लगता है।

सामाजिक जीवनके लिये क्रोधकी बड़ी आवश्यकता है। यदि क्रोध न हो तो जीव बहुतसे दु.खोंकी चिर-निवृत्तिके लिये यत्न ही न करे। कोई मनुष्य किसी दुष्टका नित्य प्रहार सहता है। यदि उसमे क्रोधका विकास नहीं हुआ है तो वह केवल "आह ऊह" करेगा, जिसका उस दुष्टपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उस दुष्टके हृदयमे दया आदि उत्पन्न करनेमे बड़ी देर लगेगी। प्रकृति किसीको इतना समय ऐसे छोटे छोटे कामोंके लिये नहीं दे सकती। भयके द्वारा भी प्राणी अपनी रक्षा करता है, पर समाजमें इस प्रकारकी दु.ख निवृत्ति चिरस्थायिनी नहीं होती। मेरे कहनेका यह अभिप्राय नहीं कि क्रोधके समय क्रोध-कर्त्ताके हृदयमे भावी दु खसे बचने या बचानेकी इच्छा रहती है बल्कि चेतन प्रकृतिके भीतर क्रोध इसीलिये है।

ऊपर कहा जा चुका है कि क्रोध दुःखके कारणके परिज्ञान वा साक्षात्कारसे होता है अतः एक तो जहां इस ज्ञानमें त्रुटि हुई वहाँ क्रोध धोखा देता है। दूसरी बात यह है कि क्रोध, जिस ओरसे दुःख आता है, उसी ओर देखता है, अपने धारणकर्ताकी ओर नहीं। जिससे दुःख पहुँचा है वा पहुँचेगा उसका नाश हो वा उसे दुःख पहुँचे, यही क्रोधका लक्ष्य है। क्रोध करनेवालेका फिर क्या होगा, इससे उसे कुछ सरोकार नहीं। इसीसे एक तो मनोवेग ही एक दूसरेको परिमित किया करते हैं, दूसरे विचार शक्ति भी उनपर अंकुश रखती है। यदि क्रोध इतना उग्र हुआ कि हृदयमें दुःखके कारणकी अवरोधशक्तिके रूप और परिणाम के निश्चय दया, भय आदि और विकारोंके सञ्चार तथा उचित अनुचितके विचारके लिये जगह ही नहीं रही तो बहुत हानि पहुँच जाती है। जैसे कोई सुने कि उसका शत्रु बीस आदमी लेकर उसे मारने आ रहा है और वह चट क्रोधसे व्याकुल होकर बिना शत्रुकी शक्तिका विचार वा भय किये उसे मारनेके लिये अकेला दौड़े तो उसके मारे जानेमें बहुत कम सन्देह है। अतः कारणके यथार्थ निश्चयके उपरांत आवश्यक मात्रामें और उपयुक्त स्थितिमें ही क्रोध वह काम दे सकता है जिसके लिये उसका विकास होता है।

कभी कभी लोग अपने कुटुम्बियों वा सनेहियोंसे झगड़कर उन्हें पीछेसे दुःख पहुँचानेके लिये अपना सिरतक पटक देते हैं। यह सिर पटकना अपनेको दुःख पहुँचानेके अभिप्रायसे नहीं होता, क्योंकि बिल्कुल बेगानोंके साथ कोई ऐसा नहीं करता। जब किसीको क्रोधमें सिर पटकते देखे तब समझ लेना चाहिये कि उसका क्रोध ऐसे व्यक्तिके ऊपर है जिसे उसके सिर पटकने-की परवाह है अर्थात् जिसे उसके सिर फूटनेसे यदि उस

समय नहीं तो आगे चलकर दु.ख पहुँचेगा।

क्रोधका वेग इतना प्रबल होता है कि कभी-कभी मनुष्य यह विचार नहीं करता कि जिसने दु.ख पहुँचाया है उसमें दुःख पहुँचानेकी इच्छा थी या नहीं। इसीसे कभी तो वह अचानक पैर कुचल जानेपर किसीको मार बैठता है और कभी ठोकर खाकर कंकड़ पत्थर तोड़ने लगता है। चाणक्य ब्राह्मण अपना विवाह करने जाता था। मार्गमें कुश उसके पैरमें चुभे। वह चट मट्ठा और कुदाली लेकर पहुँचा और कुशोंको उखाड़ उखाड़कर उनकी जड़ोंमें मट्ठा देने लगा। मैंने देखा कि एक ब्राह्मण देवता चूल्हा फूंकते-फूंकते थक गये। जब आग नहीं जली तब उस पर कोप करके चूल्हेमें पानी डाल किनारे हो गये। इस प्रकार-का क्रोध असंस्कृत है। यात्रियोंने बहुतसे ऐसे जंगलियोंका हाल लिखा है, जो रासतेमें पत्थरकी ठोकर लगनेपर बिना उसको चूरचूर किये आगे नहीं बढ़ते। इस प्रकारका क्रोध अपने दूसरे भाइयोंके सथानको दबाये हुए है। अधिक अभ्यासके कारण यदि कोई मनोवेग अधिक प्रबल पड़ गया तो वह अंतःकरणमें अव्यवसथा उत्पन्नकर मनुष्यको फिर बचपनसे मिलती-जुलती अवसथामें ले जाकर पटक देता है।

जिससे एक बार दु.ख पहुँचा, पर उसके दोहराये जानेकी सम्भावना कुछ भी नहीं है उसको जो कष्ट पहुँचाया जाता है वह प्रतिकार कहलाता है। एक दूसरे से अपरिचित दो आदमी रेलपर चले जाते हैं। इनमेंसे एकको आगे हीके सटेशनपर उत-रना है। सटेशनतक पहुँचते-पहुँचते बात ही बातमें एकने दूसरे-को एक तमाचा जड़ दिया और उतरनेकी तैयारी करने लगा। अब दूसरा मनुष्य भी यदि उतरते उतरते उसको एक तमाचा लगा दे तो यह उसका प्रतिकार वा बदला कहा जायगा, क्योंकि

उसे फिर उसी व्यक्तिसे तमाचे खानेकी सम्भावनाका कुछ भी निश्चय नहीं था। जहां और दुःख पहुँचनेकी कुछ भी सम्भावना होगी वहाँ शुद्ध प्रतिकार नहीं होगा। हमारा पड़ोसी कई दिनोंसे नित्य आकर हमें दो-चार टेढ़ी-सीधी सुना जाता है। यदि हम उसको एक दिन पकड़कर पीट दें तो हमारा यह कर्म शुद्ध प्रतिकार नहीं कहलायेगा, क्योंकि नित्य गाली सुनानेके दुःखसे बचनेके परिणामकी ओर भी हमारी दृष्टि रही। इन दोनों अवस्थाओंको ध्यानपूर्वक देखनेसे पता लगेगा कि दुःखसे उद्विग्न होकर दुःखदाताको कष्ट पहुँचानेकी प्रवृत्ति दोनोंमें है। पर एकमें वह परिणाम आदिके विचारोंको बिल्कुल छोड़े हुए है और दूसरेमें कुछ लिये हुए। इनमेंसे पहले प्रकारका क्रोध निष्फल समझा जाता है। पर थोड़े धैर्यके साथ सोचनेसे जान पड़ेगा कि इस प्रकारके क्रोधसे स्वार्थ-साधन तो नहीं होता पर परोक्ष रूपमें कुछ लोक-हित साधन अवश्य हो जाता है। दुःख पहुँचानेसे हमें फिर दुःख पहुँचनेका डर न सही पर समाजको तो है। इससे उसे उचित दण्ड दे देनेसे पहले तो उसकी शिक्षा वा भलाई हो जाती है। क्रोधकर्त्ताकी दृष्टि तो इन परिणामोंकी ओर नहीं रहती, पर सृष्टि-विधानमें इस प्रकारके क्रोधकी नियुक्ति है इन्हीं परिणामोंके लिये।

क्रोध सब मनोविकारोंसे फुर्तीला है इसीसे अवसर पड़नेपर यह और दूसरे मनोविकारोंका भी साथ देकर उनकी सहायता करता है, कभी वह दयाके साथ कूदता है, कभी घृणाके। एक क्रूर कुमार्गी किसी अनाथ अबलापर अत्याचार कर रहा है। हमारे हृदयमें उस अनाथ अबलाके प्रति दया उमड़ रही है पर दयाकी पहुँच तो आर्त्त ही तक है यदि वह स्त्री भूखी होती तो हम उसे कुछ रुपया पैसा देकर अपने दयाके वेगको

शांत कर लेते, पर यहां तो उस दुःखका हेतु मूर्तिमान तथा अपने विरुद्ध प्रयत्नोको ज्ञानपूर्वक व्यर्थ करनेकी शक्ति रखनेवाला है। ऐसी अवस्थामे क्रोध ही उस अत्याचारीके दमनके लिये उत्तेजित करता है जिसके विना हमारी दयाही व्यर्थ हो जाती है। क्रोध अपनी इस सहायताके बदलेमे दयाकी वाहवाहीको नहीं बटाता। काम क्रोध करता है पर नाम दयाका ही होता है। लोग यही कहते हैं "उसने दया करके बचा लिया" यह कोई नहीं कहता कि "क्रोध करके बचा लिया।" ऐसे अवसरोंपर यदि क्रोध दयाका साथ न दे तो दया अपने अनुकूल परिणाम उपस्थित ही नहीं कर सकती। एक अघोरी हमारे सामने मक्खियां मार-मारकर खा रहा है और हमे घिन लग रही है। हम उसे नम्रतापूर्वक हटनेके लिये कह रहे है और वह नहीं सुन रहा है। चट हमे क्रोध आ जाता है और हम उसे बलात् हटाने में प्रवृत्त हो जाते हैं।

क्रोधके निरोधका उपदेश अर्थपरायण और धर्मपरायण दोनो देते है। पर दोनोको जिस अतिसे अधिक सावधान रहना चाहिये, उसमे दोनो ही चूकते हैं, क्योंकि वाकी रुपया वसूल करनेका ढङ्ग बतलानेवाला चाहे कड़े पड़नेकी शिक्षा भी दे पर धनके साथ धर्मकी ध्वजा लेकर चलनेवाला धोखेमे भी क्रोधको पापका बाप ही कहेगा। क्रोध रोकनेका अभ्यास ठगो और स्वार्थियोंको सिद्ध और साधकोसे कम नहीं होता। जिससे कुछ स्वार्थ निकालना रहता है, जिसे बातोमे फंसाकर ठगना रहता है उसकी कठोरसे कठोर और अनुचितसे अनुचित बातोपर न जाने कितने लोग जरा भी क्रोध नहीं करते। पर उनका वह अक्रोध न धर्मका लक्षण है न साधन।

इस विवरणसे स्पष्ट है कि वैर उन्हीं प्राणियोमे होता है।

जिनमें धारणा अर्थात् भावोंके संचयकी शक्ति होती है पशु और बच्चे किसीसे वैर नहीं मानते। वे क्रोध करते हैं और थोड़ी देरके बाद भूल जाते हैं। क्रोधका यह स्थायी रूप भी आपदाओंकी पहचान कराकर उनसे बहुत कालतक बचाये रखनेके लिये दिया गया है।

अभ्यास

(१) क्रोधके उत्पन्न होनेका क्या कारण है ?

(२) क्या सामाजिक जीवनके लिये क्रोध ऐसा मनोविकार भी आवश्यक है ?

(३) क्रोध सब मनोविकारोंसे फुर्तीला होता है ? प्रमाणित करो।

(४) 'प्रतिकार' के लिये क्रोध कैसे उत्पन्न होता है ? उदाहरण देकर बतलाओ।

(५) क्रोधको किस परिस्थितिमें और मनोविकारोंकी सहायता लेनी पड़ती है ?

(६) इस पाठसे मानसिक-विज्ञानके विषयमें तुम्हारे हृदयमें क्या धारणा उत्पन्न होती है ?

(७) आविर्भाव, प्रवृत्त, परोक्ष, अन्तःकरण, उपयुक्त इन शब्दोंका अर्थ बतलाओ ?

(८) पाठके आधारपर 'क्रोध' पर एक छोटा निबन्ध रचो।

(९) चिरस्थायिनी, असक्तमें सन्धि बतलाओ ?

(१०) असक्त क्रोध किसे कहते हैं ?

१६—प्रेम-प्रवाह

[ले०—पण्डित गोकुलचन्द्र शर्मा, बी० ए०]

(जन्म वैशाख शुक्र १० स० १९४१ वि०, जन्म भूमि हरिनगरा 'अलीगढ' वर्तमान निवास-स्थान अलीगढ। आपने अपने "परन्तप" नामसे बड़ी सुन्दर रचनायें लिखी हैं। आपकी अनेक कविता-पुस्तको में 'तपस्वी तिलक' एक उत्कृष्ट काव्य माना जाता है। हिन्दी-गद्य-रचना विषयपर आपने अभी हालहीमे एक अच्छी मौलिक पुस्तक लिखी है। आजकल आप अलीगढके एक हाई स्कूलमें अध्यापक हैं। लगभग १५ वर्षोंसे आप हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं।

(१)

इच्छा नहीं हमे है भगवन् ! हो सम्पत्ति हमारे पास।
नहीं चाहिये प्रासादोका वह विलास-मय सुखद निवास॥
सोवें - सूखी तृण-शय्या पर, कर फल-पत्तो पर निर्वाह।
पर समताका हृदय-भूमि पर सञ्चालित हो प्रेम-प्रवाह॥

(२)

दृष्टि हमारी धुँधली होकर, धोखा कभी न दे सर्वेश।
भातृ-भावके शीशेमे से, देखे बंधुवर्ग के क्लेश॥
पतित जन्म-भूमिके हित हो, बच्चा-बच्चा वीर वराह।
रुधिर-रूप मे उमड़े अच्युत ! हृन्निर्झर से प्रेम-प्रवाह॥

(३)

स्वार्थ शून्य हो सत्यभावसे, मिले नाथ हम सब जी खोल।
नीच भावकी कीच फाड़कर, उगे प्रीति पङ्कज अनमोल॥
तन, मन, धन, अर्पण कर मेटै, दैन्य-दासता दारुण दाह।
हो स्वातंत्र्य-समीरणका फिर, माधव ! प्रचलित प्रेम प्रवाह।

(४)

सहनशीलता साहससे हो भक्ति-पूर्ण, सच्चा अनुराग।
सीखें सत्य व्रत हित करना, सभी सम्पदाओंका त्याग॥
विपद्वज्रका प्रबलपात हो, पर निकले न कभी भी आह।
चले निरन्तर नेत्र नीरसे, मातृ-भूमिका प्रेम-प्रवाह॥

अभ्यास

(१) प्रेम-प्रवाह, तृण-शैय्या, बन्धु-वर्गमें कौन समास है ?

(२) विपद्वज्र, नेत्र-नीर, हृन्निर्झर, अच्युत, आदि शब्दोंका अर्थ बताओ ?

(३) 'दृष्टि हमारी—'हृन्निर्झरसे प्रेम-प्रवाह' का भावार्थ समझाओ ?

(४) प्रेम क्या है ? और कितने प्रकारका होता है ?

(५) वात्सल्य-रसमें जो प्रेम वर्तमान है क्या वह देश-प्रेमसे विभिन्न है ?

(६) शुद्ध प्रेम किसे कहते हैं ?

(७) इस पद्यके पढ़नेसे हृदयमें कैसे भाव उठते हैं ?

(८) यदि संसारमें 'प्रेम' का अस्तित्व न हो तो उसकी क्या अवस्था होगी ?

२०—कबीर साहब

[ले०—पं० रामनरेश त्रिपाठी]

(आपका जन्म संवत् १९४६ विक्रमी, जौनपुर जिलान्तर्गत कोयरीपुर ग्राममें हुआ। आपने 'पथिक' तथा 'मिलन' नामक काव्य लिखकर तथा कविता-कौमुदी-ग्रन्थमाला सम्पादित करके अच्छा यशोपार्जन किया है। आपकी कविता बड़ी ही भावमयी होती है। आप प्रयागके हिन्दी-मन्दिरके स्वामी, पुस्तक विक्रेता और ऊँची श्रेणीके प्रकाशक तथा भावुक कवि हैं।)

संयुक्त प्रांतमें शायद ही कोई ऐसा हिंदू होगा जो कबीर

साहबको न जानता होगा। कबीर साहबके भजन मन्दिरोंमें और सत्संगतके अवसरोंपर गाये जाते हैं। उनकी साखियाँ प्रायः कहावतोंका काम दिया करती हैं।

कबीर साहब एक पंथके प्रवर्तक थे, जिसे कबीर पंथ कहते हैं। कबीर-पंथियोंमे निम्नश्रेणीके लोग अधिकांश पाये जाते हैं। उनमेंसे कुछ तो साधु है जो गाँवोंमे कुटी बनाकर रहते हैं और कुछ गृहस्थ हैं। कबीरपंथी साधु सिरपर नोकदार पीले रंगकी टोपी पहनते है।

कबीर साहब कौन थे? कहाँ और किस समयमें वे उत्पन्न हुए? उनका असली नाम क्या था? बचपनमे वे कौन धर्माव-लम्बी थे? उनका विवाह हुआ था या नहीं? और वे कितने समयतक जीवित रहे? इन बातोंमे बड़ा मतभेद है। कबीर साहबकी जीवनी लिखनेवाले भिन्न-भिन्न बातें बतलाते हैं। उनमें सत्यका अंश कितना है, इसका पता लगाना सहज नहीं है। "कबीर कसौटी" मे कबीर साहबका जन्म संवत् १४५५ वि० में और मरण १५७५ वि० मे होना लिखा है। कबीर-पंथी लोग उनकी उम्र तीन सौ वर्षकी बतलाते हैं। उनके कथनानुसार कबीर साहबका जन्म १२०५ वि० मे और मरण १५०५ वि० मे हुआ है। इनमेंसे किसकी बात सत्य है? इसका निर्णय करना बड़ी खोजका काम है। कबीर पंथके विद्वानोंकी रायमे कबीर साहबका जन्म सम्वत् १४५५ ही सत्य कहा जाता है।

कबीर साहबने अपनेको जुलाहा लिखा है। एक जगह वे कहते हैं —

तू ब्राह्मण मैं काशीका जुलाहा बूझहु मोर गियाना।

(आदि ग्रंथ)

इससे अब इस बातमे तो कुछ सदेह रह ही नहीं जाता कि

कबीर साहब जुलाहे थे। परंतु वे जन्मके जुलाहे नहीं थे, यह कहावतोंसे मालूम होता है।

कहा जाता है कि संवत् १४५५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमाको एक ब्राह्मणकी विधवा कन्याके पेटसे एक पुत्र पैदा हुआ। लोक-लज्जा-वश उसने बालक लहर तालाव (काशी , के किनारे फेंक दिया। संयोगसे नीरू जुलाहा अपनी स्त्री नीमाके साथ उसी राहसे आ रहा था। उसने उस अनाथ बच्चेको घर लाकर पाला। पीछे वही कबीर नामसे विख्यात० हुए।

कबीर साहब बालकपनसे ही बड़े धर्मपरायण थे। जब उनको सुध बुध हो गई, तब वे तिलक लगाकर राम राम करते थे। एक जुलाहेके घरमें रहकर तिलक लगाना और राम राम जपना असम्भव-सा प्रतीत होता है। परंतु संगतिका प्रभाव बड़ा विचित्र होता है, यह असम्भवको भी संभव कर देता है।

ऐसी कहावत है कि कबीर साहब स्वामी रामानंदके शिष्य थे। स्वामी रामानंद शेष रात्रिमें गङ्गास्नानके लिये मणि-कर्णिका घाटपर नित्य जाया करते थे। एक दिन इसी समय कबीर साहब घाटकी सीढ़ियोंपर जाकर सो रहे। अंधेरेमें स्वामीजीका पैर उनके ऊपर पड़ गया। तब वे कुलबुलाये। स्वामीजीने कहा—"राम-राम कह, राम-राम कह"। कबीर साहबने उसीको गुरु-मंत्र मान लिया। उसी दिनसे उन्होंने काशीमें अपनेको स्वामी रामानन्दका शिष्य प्रसिद्ध किया। यवनके घरमें पालन होनेपर भी कबीर साहबकी प्रवृत्ति हिन्दू-धर्मकी तरफ अधिक थी।

कबीर साहब अपने जीवनका निर्वाह अपना पैतृक व्यव-साय करके ही करते थे। यह बात वे स्वयं स्वीकार करते हैं—"हम घर सूत तनहिं नित ताना।"

कवीर साहबने विवाह किया था या नहीं, इस विषयमें भी बड़ा मतभेद है। कवीर-पंथके विद्वान कहते हैं कि लोई नामकी स्त्री उनके साथ आजन्म रही, परन्तु उन्होंने उससे विवाह नहीं किया। इसी प्रकार कमाल उनका पुत्र, और कमाली उनकी पुत्री थी, इस विषयमें भी विचित्र बातें सुनी जाती है। "डूबे वंश कवीरके, उपजे पूत कमाल" यह भी एक कहावतसा प्रसिद्ध हो रहा है। इससे पता चलता है कि कवीरने विवाह अवश्य किया था और कमाल कवीरका पुत्र था। कमाल भी कविता करते थे। परन्तु उन्होने कवीर साहबके सिद्धान्तोके खण्डन करनेमे ही अपनी सारी उम्र विता दी। उसीसे "डूबे वंश कवीरके उपजे पूत कमाल" कहा गया है।

कवीर साहब पढ़े-लिखे न थे। सतसंगी थे। सतसंगसे ही उन्होंने हिन्दू-धर्मकी गूढ़-गूढ़ बातें जान ली थीं। उनके हृदयमें हिन्दू मुसलमान किसीके लिये द्वेष न था, वे सत्यके बड़े पक्षपाती थे। जहा उन्हें सत्यके विरुद्ध कुछ दिखाई पड़ा, वहां उन्होंने उसके खण्डन करनेमें जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखलायी।

कवीर साहबने अपना अधिकार हिन्दू मुसलमान दोनोपर जमाया। आजकल भी हिन्दू-मुसलमान दोनो प्रकारके कवीर-पंथी मिलते हैं। परन्तु सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान दोनो का कवीर मतसे वैर हो गया। हिन्दू धर्मके नेता एक अहिन्दूके मुखसे हिन्दू धर्मका प्रचार देखकर भड़के और मुसलमान, कवीर साहबके हिन्दू आचार्यका शिष्य होने तथा हिन्दू धर्मका प्रचार करनेके कारण कट्टर विरोधी हो गये। इस विरोधके कारण उनको वड़ी-वड़ी कठिनाइयॉ भोगनी पड़ीं। परन्तु उनके हृदयमें सदा सत्यका दीपक जल रहा था। व

किसीके बुझाये न बुझा।

कबीर साहबने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। वे साखी और भजन बनाकर कहा करते थे और उनके चेले उसे कंठस्थ कर लेते थे। पीछेसे वह सब संग्रह कर लिया गया। कबीर-पंथके अधिकांश उत्तम-उत्तम ग्रंथ उनके शिष्योंके रचे हुए कहे जाते हैं।

"खास ग्रन्थ" में निम्नलिखित पुस्तकें हैं।

१—कबीर पॉजी २—आनन्द राम सागर ३—शब्दावली ४—रेखता ५—झूलन ६—कहरा ७—रमैनी ८—साखी ९—बीजक।

कबीर-पंथियोंमें बीजकका बड़ा आदर है। बीजक दो है—एक तो बड़ा, जो स्वयं कबीर साहबका काशीराजसे कहा हुआ बतलाया जाता है और दूसरे बीजकको कबीरके एक शिष्य भग्गूदासने संग्रह किया है। दोनोंमें बहुत कम अन्तर है।

कबीर साहबका उल्टा प्रसिद्ध है। मेरी समझमें लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये ही कबीर साहब ऐसा कहा करते थे। यों तो अर्थ लगानेवाले कुछ न कुछ उल्टा सीधा अर्थ लगा ही लेते हैं परन्तु खींच तानकर लगाये गये ऐसे अर्थोंमें कुछ विशेषता नहीं रहती।

लोगोंका ऐसा कथन है कि मगहमें प्राण-त्याग करनेसे मुक्ति नहीं मिलती। भला सत्यान्वेषक कबीर इस बातको कैसे मान सकते थे, उन्होंने लोगोंका यह भ्रम मिटानेके लिये ही मगहमें जाकर शरीर छोड़ा। इस विषयमें उन्होंने कहा है—

जो कबीर काशी मरे तो रामहिं कौन निहोरा।
जस काशी तस महगा ऊसर हृदय राम जो होई।

❀ ❀ ❀

कबीर साहबकी कवितामें बड़ी शिक्षा भरी है। एक एक

पदसे उनकी सत्यनिष्ठा प्रकट होती है। उन्होंने जो कहा है, प्राय: सभी एकसे एक बढ़कर हैं।

अभ्यास

(१) कबीर साहबके जन्मके सम्बन्धमें तुम क्या जानते हो?
(२) कबीरदास किस धर्मके अनुयायी थे?
(३) कबीरदासका स्वभाव कैसा था?
(४) आजकलके धार्मिक विचारों और कबीरदासकी भावनाओंमें कितना सामञ्जस्य पाया जाता है?
(५) कबीरदासकी रचनाओंमें कौनसी सबसे श्रेष्ठ समझी जाती है और किस दृष्टिसे?
(६) स्वामी रामानन्दने उन्हें कब गुरु-दीक्षाका मन्त्र दिया?
(७) कबीरदास किस जातिके थे?
(८) कबीरदास पाखंडके कट्टर विरोधी थे। सिद्ध करो?
(९) जो कबीर काशी ... निहोरा।
उपर्युक्त पदसे कबीरदासका रामके प्रति दृढविश्वास प्रकट होता है। कैसे? सिद्ध करो।
(१०) कबीरदासके जीवन-चरित्रपर एक निबन्ध तैयार करो।

२१—सज्जन-संकीर्त्तन

[ले०—ठाकुर गोपालशरण सिंह]

(जन्म पौष शुक्ल प्रतिपदा स० १९४८। आप रीवा राज्यान्तर्गत उच्च श्रेणीके प्रतिष्ठित इलाकेदार हैं। संस्कृत और अंगरेजीका आपको यथेष्ठ ज्ञान है। हिन्दीके वर्तमान कवियोंमें आपका स्थान बहुत उच्च है। बाल्य-कालसे ही आप कविताके प्रेमी हैं और विद्यार्थी जीवनसे ही कविता करते

आ रहे हैं। स० १९८२ मे होनेवाले अखिल भारतीय कवि सम्मेलनके, जो वृन्दावनमे हुआ था, आप सभापति मनोनीत हुए थे। आपका स्वभाव कोमल और प्रजाप्रिय है।

(१)

जन्म ग्रहण यद्यपि लाखो नर, प्रति दिन पृथ्वीपर करते;
जननी जन्म भूमिका आनन, उज्ज्वल सदा तुम्हीं करते।
होते उदित गगनमें अगणित, ग्रह नक्षत्र औ तारे;
सूर्य शशि ही किन्तु लोकको, करते आलोकित प्यारे॥

(२)

कितनाही हो क्लेश भयंकर, तुम न तनिक घबराते हो;
अपने कर्त्तव्यो को जीसे, सदा सहर्ष निभाते हो।
भ्रमण, कष्टपर ध्यान न दे रवि, चक्कर नित्य लगाता है;
धरणी धारण किये शीश पर, शेष नहीं उकताता है॥

(३)

बुरे भाव हृदयस्थलसे तुम, कभी न आने देते हो;
मनको निन्द्य नीच कर्मोंकी, ओर न जाने देते हो।
प्रबल उपद्रव भी न तुम्हारा, शान्ति भंग कर सकता है;
निस्तब्धता नीर-निधिकी क्या, झञ्झानिल हर सकता है?

(४)

तुम्हे अन्यका कष्ट देख कर, मर्मान्तक दुख होता है;
पर-हित-सम्पादनमें तुमको, सौख्य सर्वदा होता है।
अन्य देश-वासी जनका भी, क्लेश हर्षसे हरते हो;
अपनी पावन प्रेम राशिसे, पावन जगको करते हो॥

(५)

दुःखित दीन जनोसे तुम अति, सहानुभूति दिखाते हो;
भूले भटके लोगोंको तुम, सत्पथ पर ले जाते हो।

होनेपर परतन्त्र तुम्हारी, प्रकृति न पलटा खाती है;
परवश होनेपर भी कोकिल, मीठी कूक सुनाती है॥

(६)

कुछ भी हो पर सत्यव्रतको, छोड़ नहीं तुम सकते हो;
सदाचारके नियम कभी भी, तोड़ नहीं तुम सकते हो।
तुम न कुपथ पर चल सकते हो, चाहे प्राण चला जावे;
सच्चा वही धीर-धारी जो, सङ्कट समय न घबरावे॥

(७)

तुम समाजके दोष सदा ही, निर्भय होकर दिखलाते;
वह उपाय उसके सुधारके, सोच समझकर बतलाते।
अत्याचार किसीका तुमसे, क्षणभर सहा न जाता है;
तुम रहते हो जहाँ, वहाँ नित, न्याय-केतु फहराता है॥

(८)

औरोंका गुण-गान श्रवणकर, मुदित सदा, तुम हो जाते;
किन्तु प्रशंसा अपनी सुनकर, अति विनीत हो सकुचाते।
उन्नति-अवनति दोनोंमें हम, तुम्हें प्रसन्न-चित्त पाते;
अरुण वर्ण हो उदित दिवाकर, अस्त अरुण ही हो जाते॥

(९)

अपना समय अमूल्य कभी तुम, व्यर्थ न जाने देते हो;
काम शक्तियोंसे तुम अपनी, पूर्ण रीतिसे लेते हो।
कहीं रहो पर दृष्टि तुम्हारी, सदा लोक-हितपर रहती;
रहे कहीं भी सुधा सुधाकर, से सदैव ही है बहती॥

अभ्यास

(१) सज्जनोंके स्वभावका वर्णन करो।

(२) सूर्य, चन्द्र, कोकिल और शेषनागके गुण-विशेषको अपने शब्दोंमें वर्णन करो।

(३) 'अरुण वर्ण हो जाते' मे भाव बतलाओ।

(४) निस्तब्धता, झञ्झानिल, सम्पादन, सहानुभूति, परतन्त्रके शब्दार्थ बतलाओ।

(५) मर्मान्तक, न्याय-केतु, नीर-निधि, लोकहितमे समास बतलाओ।

(६) सज्जनोंके गुणोंपर एक छोटा-सा निबन्ध तैयार करो।

(७) तुम्हें सज्जन बननेके लिये किस विशेष गुणकी आवश्यकता पड़ेगी।

(८) इस पद्यसे तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?

२२—चरित्र-संगठन

[ले०—बाबू गुलाब राय एम० ए०, एल० एल० बी०]

(बाबू गुलाब राय एम० ए०, हिन्दीके सिद्धहस्त लेखक और दर्शन-शास्त्रके अच्छे विद्वान हैं। आप छतरपुर राज्यके उच्च अधिकारियोंमें हैं। आपने रस, तर्कशास्त्र आदिपर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आपके फुटकर लेख समाचार पत्रोंमें निकलते रहते हैं। यह लेख भी उन्हींमेंसे एक है।)

मनुष्योंकी विशेषता उनके चरित्रमें है। यदि एक मनुष्य दूसरेसे अधिक आदरणीय माना जाता है तो वह उसके चरित्रके कारण। मनुष्यका आदर, उसके पद, धन, विचारके कारण होता है, परन्तु यह सब एक प्रकारसे बाह्य है। पद स्थायी नहीं यदि स्थायी भी हो तो उसके लिये जो आदर होता है, वह भयके कारण। धनका आदर वही करेगा जिसको धनीसे कुछ लाभ उठानेकी इच्छा हो। विद्याका मान सज्जन अवश्य करते हैं। वह भी जब विद्या, विनय एवं चरित्रसे युक्त हो। रावणमें विद्या, धन, बल और पद होते हुए भी वह अपने राक्षसी कर्मके कारण निन्दनीय था। राक्षस साक्षर होकर वन्दनीय नहीं बन जाते।

मनुष्यका मूल उसके चरित्रमे है। चरित्रमे ही उसके आत्मवलका प्रकाश होता है और यह पता लगता है, कि उसकी आत्मा कितनी वलवती है। मनुष्यका चरित्र ही वतलाता है कि वह कितने पानीका है।

यह चरित्र क्या है, जो इतना महत्त्व रखता है? यह चरित्र उन गुणोका समूह है, जो हमारे व्यवहारसे सबध रखते हैं। दार्शनिक वुद्धि, वैज्ञानिक कौशल, काव्यकी प्रतिभा ये सब वांछ-नीय हैं परन्तु ये हमारे चरित्रसे सम्बन्ध नहीं रखते। फिर चरित्र में क्या बात आती है? विनय, उदारता, लालचमे न पड़ना। धैर्य, सत्यभाषण, वचनका प्रतिपालन एवं कर्त्तव्यपरायणता आदि गुण चरित्रमे आते हैं। चरित्रमे इन सब वातोके अतिरिक्त और भी बहुतसी बातें हैं, परन्तु ये मुख्य हैं। ये सब गुण प्राय. स्वाभा-विक होते हैं, परन्तु अभ्याससे बढ़ाये एव पुष्ट किये जाते है। अभ्यासमे सत्संगसे वहुत सहायता मिलती है। अभ्यासके लिये वाल्यकाल ही विशेष उपयुक्त है। वह काल वनावका है। वनते समय जैसा मनुष्य वन जावे वैसा ही वह जीवन पर्य्यन्त रहता है। वाल्यकालमे स्नायु-संस्थान कोमल तथा अन्ध कार्य्य-संस्कारो से दूषित नहीं होता, इस कारण उस कालमे जो अभ्यास डाला जाता है, वह सहजमे ही सिद्ध हो जाता है। प्रौढ़ा-वस्थामे अन्य संस्कारोके दृढ़ हो जानेके कारण नये संस्कार कठिनाईसे जमते हैं।

मनुष्य-जीवनका प्रभात, जिसमे सब प्रकारकी शक्तियोंके विकासकी संभावना होती है, विद्यार्थी-जीवनमे व्यतीत होता है। जो लोग इस विद्यार्थी-जीवनमे हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, उनका परम उत्तरदायित्व है कि यह काल केवल ज्ञान संग्रहमे ही न चला जावे। वाल्यावस्था फिर लौटकर नहीं आती। भावी चरित्र

निर्माण करनेका यही सुअवसर है। विद्यार्थी और शिक्षक अपने अपने उत्तरदायित्वको समझ नीचे लिखे सिद्धान्तोपर ध्यान दें और इनसे विद्यार्थीके चरित्र संगठनमें सहायता लें। यद्यपि यह सिद्धान्त प्राचीन कालसे बताये जा रहे हैं और इसीलिये इनपर कुछ लिखना नीरस पिष्ट पेषण समझा जाता है, तथापि इनके प्रचारकी इतनी ही आवश्यकता है जितनी कि प्राचीन कालमें थी और चरित्र संगठनकी आवश्यकता देखते हुए इनपर विवेचन करना समयका दुरुपयोग नहीं समझा जावेगा।

विनय

विनय विद्याका भूषण है। बिना विनयके विद्या शोभा नहीं देती। श्रीमद्भगवद्गीतामे ब्राह्मणके विशेषण "विद्या विनय सम्पन्न" कहा है। जिस विद्याके साथ विनय नहीं है उससे कोई लाभ नहीं उठा सकता। विनय केवल विद्याको ही नहीं, वरन् धन और बल दोनोको ही शोभा देती है। भृगुजीने कृष्ण भगवानके वक्ष स्थलपर लात मारी तब भगवान् पूछने लगे कि महराज! आपके पैरमें चोट तो नहीं आई। विनयका क्या ही उत्तम आदर्श है! विनय केवल शिष्टाचारके लिये ही आवश्यक नहीं है वरन् इससे आत्माकी शुद्धि होती है। विनयशील मनुष्य अभिमानके दोषसे बचा रहता है। नम्र-भाव दूसरेमें प्रेम-भाव उत्पन्न करता है और अपनेमें अपूर्व शान्ति अनुभव करता है। धन, बल और विद्याके होते हुए भी जो विनय करता है उसको कोई कायर नहीं कह सकता। भय-वश विनय आत्माको गिराती है किंतु प्रेम और निरभिमानताकी विनय आत्माका उत्थान करती है। विनयका अभाव एक प्रकारका खोखलापन प्रकट करता है। जिन लोगोंमें कोई श्लाघनीय गुण नहीं होता, वह अपनी ऐंठ तथा डॉट

फटकारसे लोगोंपर प्रभाव जमाते हैं, किन्तु गुणवालोंको इसकी आवश्यकता नहीं, उनका प्रभाव स्वतः सिद्ध है। यदि विनयशील मनुष्यका समाजमें प्रभाव थोड़ा हो तो विनयशील मनुष्यका दोष नहीं। यह समाजका ही दोष है और इसके अतिरिक्त प्रेम-का प्रभाव चाहे थोड़ा हो, दबावके प्रभावकी अपेक्षा चिरस्थायी होता है। यद्यपि थोड़ी देरके लिये मान भी लिया जाय कि विनय सब स्थानोंमें काम नहीं देती, (जैसे शत्रुके सम्मुख) तथापि हमको यह कहना पड़ेगा कि विनयशील पुरुषको ऐसे कम अवसर आवेंगे जब कि उसे अपनी विनयके कारण गौरव हानिका दुःखद अनुभव करना पड़े।

उदारता

उदारताका अभिप्राय केवल निःसंकोच भावसे किसीको धन दे डालना नहीं वरन् दूसरोंके प्रति उदार-भाव रखना भी है। उदार पुरुष सदा दूसरेके विचारोंका आदर करता है और समाजमें सेवक भावसे रहता है। "उदार चरितानां तु वसुधैव कुटु-म्बकम्" में जो उपदेश दिया गया है, वह केवल धनकी उदारता नहीं वरन् उसमें प्रेम और सेवाकी भी उदारता सम्मिलित है। बहुतसे लोग आपकी धन-सम्बन्धी उदारताकी अपेक्षा नहीं करते। बहुतसे निर्धन भी इस बातको अपनी निर्धनताके गौरवके विरुद्ध समझते हैं कि वह आपकी आर्थिक सहायता लें, किन्तु वह आपके उदारतापूर्ण शब्दोंके सदा भूखे रहते हैं। यह न समझो कि केवल धनसे ही उदारता हो सकती है, सच्ची उदारता इस बातमें है कि मनुष्यको मनुष्य समझा जावे। उसके भावोंका उतनाही आदर किया जावे जितना अपने भावोंका। ऐसा आदर उदारता नहीं, वरन् कर्त्तव्य है। प्रत्येक मनुष्यमें आदरणीय गुण होते हैं। यह न समझना चाहिये कि धन, विद्या अथवा पद

ही आदरके विषय है। गरीब आदमी यदि ईमानदार है तो वह बेईमान धनाढ्यकी अपेक्षा आदरणीय है; क्योंकि गरीबीमे ईमानदार रहना और भी कठिन है।

लालच

मनुष्य जितना ही बलवान माना गया है उतना ही कमजोर है। जरासे अविचारसे मनुष्यका पतन हो जाता है और वर्षोंका तप धूलमे मिल जाता है। लालच केवल धनका ही लालच नहीं, वरन् हरएक प्रकारका लालच होता है। लालच इसलिये दिया जाता है कि मनुष्य स्व-कर्त्तव्यसे च्युत हो जाय, किन्तु मनुष्यकी श्रेष्ठता इसीमे है कि वह न्याय पथसे न हटे। महाराज दिलीपको हर प्रकारका लालच दिया गया, किन्तु वह कर्त्तव्यसे न हटे। अप्राप्य वस्तुके त्यागसे, प्राप्त वस्तुका त्याग अधिक कठिन है। यद्यपि लालचके होते हुए लालचके ऊपर विजय प्राप्त करनेमे बहादुरी है तथापि विज्ञ-पुरुषको यही चाहिए कि वह लालचसे दूर रहे। ईसाई लोग ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं "या खुदा मुझे परीक्षामे मत डाल।" जहाँतक हो थोड़ेसे लालच से भी बचनेका प्रयत्न किया जावे। जो लोग थोड़ेसे लालचपर विजय नहीं पा सकते वह लालचसे बचनेमे असमर्थ हैं। हमारे यहां भगवान् श्रीरामचन्द्रका ज्वलंत उदाहरण मौजूद है। उन्होने साम्राज्यका लालच छोड़ा और कर्त्तव्यसे विमुख न हुए। यदि जरा ढील डालते तो महाराजा दशरथ तुरत अपने बचनसे फिर जाते।

धैर्य

कठिनाइयोमे चित्तको स्थिर रखना धैर्य कहलाता है। मनुष्यका-जीवन पथ कण्टकाकीर्ण है। मनुष्य-जीवनमे कठिनाइयाँ

आती ही हैं, किन्तु उनका सामना ज्ञानी लोग ज्ञानसे करते हैं एवं मूर्ख लोग रोकर। कठिनसे कठिन स्थितिमें प्रसन्न रहना आत्माकी उच्चताका सूचक है। हमको अपनी आध्यात्मिकताका गौरव है। कठिनाइयाँ प्रायः वाह्य होती है। यदि हम उनपर विजय पा लें तो अच्छा ही है और विजय न पा सकें तो उनसे दवकर दुखी होना कायरता है। कठिनाइयोंसे दुखी होनेसे वह वढ़ती ही हैं, घटती नहीं। हमको अपनी शक्तियोंसे निराश न होना चाहिये। कठिनाइयोंसे दुखित न होना ही उनपर विजय पाना है। कठिनाइयोंमें दुखित होना अपने विपत्तियोंकी जीत स्वीकार करना है। राजा हरिश्चन्द्र धैर्यके ज्वलन्त उदाहरण हैं। श्रीरामचन्द्रजीके लिये कहा जाता है कि राज्याभिषेकके कारण उनको हर्ष नहीं हुआ और वनवाससे म्लान-मुख भी नहीं हुए। इसीसे वे जगत् वन्दनीय हो रहे हैं।

कर्त्तव्यपरायणता

सत्यके अतिरिक्त कर्त्तव्यमें और वहुतसी वातें आती हैं, अतः शेषमें एक व्यापक वात रख दी गई। यद्यपि यह कहना कठिन है कि कर्त्तव्य क्या है, तथापि मोटी रीतिसे सब लोग अपना-अपना कर्त्तव्य जानते हैं। जो वातें वचनेकी हैं उनसे बचना चाहिये। वस, यही कर्त्तव्यपरायणता है। अपने कर्त्तव्य में शैथिल्य न डालना चाहिये। जहाँ जरा-सा छिद्र हुआ वहां समझना चाहिये कि पतनका द्वार खुल गया। कर्त्तव्य वह नहीं जो केवल कागजपर लिखा हो। प्रत्येक स्थितिके अनुकूल अपना कर्त्तव्य निश्चित कर हमको उसके सम्पादनमें आरूढ़ रहना चाहिये। हमको केवल कर्त्तव्य ही नहीं वरन् अपने कर्त्तव्यसे भी अधिक करनेके लिये तैयार रहना चाहिये। अपना सवक

याद करना हमारा कर्त्तव्य है, किन्तु सामनेके घरमें आग लगी हो तो सबक याद करनेकी अपेक्षा आग बुझाना ही हमारा कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य पालन करनेमें ही हमारा आत्मगौरव कायम रह सकता है और आलस्यवश या लोभवश कर्त्तव्यसे च्युत होना ही हमारा पतन है।

अभ्यास

(१) कोई मनुष्य दूसरोंसे आदरणीय कब समझा जाता है ? समझाकर बतलाओ।

(२) चरित्र क्या है, चरित्रका मनुष्यपर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(३) कब चरित्रका अभ्यास हो सकता है ?

(४) विनय विद्याका "भूषण" है, इसे समझाओ।

(५) मनुष्योंको दुखकी ओर कौन ढकेलता है, इसमें चरित्रबल कहाँतक सहायक होता है ?

(६) धैर्यका कोई ज्वलन्त उदाहरण दो। यह चरित्र निर्माणके लिये कितना आवश्यक है ?

(७) विद्याबल, और धनबलसे, चरित्रबल क्यों उत्कृष्ट समझा जाता है ?

(८) चरित्र-निर्माणमें लालच पतनोन्मुखकी ओर ले जानेवाला क्यों समझा जाता है ? त्यागका क्या महत्व है ?

(९) उदार पुरुषके क्या लक्षण हैं ?

(१०) चरित्र-पालनपर एक निबन्ध तैयार करो।

२३—संसार सार

[ले०—कुमारी शान्तादेवी विदुषी 'इन्दु']

[१]

अरे ! क्यों कहते इसे असार,
नहीं नीरस है यह संसार,
तुम्हारी है यह भारी भूल,
मिलेगा इसमें तुमको सार।

[२]

दुखसे सुखका होता भान,
निधनतासे लक्ष्मीका ज्ञान,
प्याससे जलकी होती चाह,
जानकर वनते क्यों अनजान ?

[३]

जगत् केवल है झूठा स्वप्न,
विश्व केवल मायाका जाल;
स्वप्न यदि यह ? तो क्या है सत्य ?
बता दो मुझको सारा हाल।

[४]

देखते जिसको हो तुम नित्य,
उसे कहते हो मिथ्याभास,
कल्पना से कल्पित जो वस्तु,
उसे कहते हो सत्य प्रकाश।

[५]

इसी भ्रममें यह जीवन-काल,
बीतता जाता सारा हाय !
छोड़ दूँ चेष्टा करना भी,
करूँ या कोई और उपाय ?

[६]

पाप औ पुण्य, भिन्न दो वस्तु,
लगे इस मानव-तनके साथ,
खींचते अपनी-अपनी ओर,
किधर जाऊँ अब-मेरे नाथ ?

[७]

सत्य होवे या होवे झूठ,
मुझे तो है यह प्रिय संसार;
तुम्हे करने को प्रभुवर ! प्राप्त,
मिला है मुझे यही शुभ द्वार।

[८]

तुम्हारी लीला लीलामय,
जानता कौन, किसे है शक्ति ?
बचा लो मुझको भव-भय से,
चरण कमलोंकी देकर-भक्ति।

अभ्यास

(१) ससार असार नहीं है। इस पद्यके आधारपर समझाओ।
(२) लेखिकाको यह ससार क्यों प्रिय है ?
(३) ससारकी सृष्टि ईश्वरका ही विकास है। समझाओ ?
(४) अर्थ बतलाओ—
जगत् केवल...... मुझको सारा हाल।

(५) शब्दार्थ बतलाओ—

असार, नीरस, भान, मिथ्याभास, कल्पना।

(६) छंद ४ का अन्वय करो।

(७) सन्धि विच्छेद करो—मिथ्याभास, सत्यप्रकाश, नीरस।

(८) जगत् सारपर एक छोटासा निबन्ध तैयार करो।

२४—ग्रामवास और नगरवास

[ले०—पं० अम्बिकादत्त व्यास]

(जन्म सम्वत् १९१५ वि०, स्वर्गवास सम्वत् १९५६ वि०, निवास स्थान, काशी। व्यासजी संस्कृत-साहित्यके दिग्गज विद्वान, हिन्दीके बड़े अच्छे लेखक और वक्ता थे। आपने 'पियूष प्रवाह' नामक मासिक पत्र निकाला था। आप ही इसके सम्पादक भी थे। आपके लिखे संस्कृत और हिन्दीके ग्रन्थोंकी संख्या लगभग ७८ है। आपकी गद्य-काव्य मीमांसा पुस्तक बड़े महत्त्वकी है)

लोग समझते हैं बड़े यशस्वी, बड़े पुरुषार्थी और बड़े विद्वान्‌को उत्पन्न करना नगरका ही काम है। ग्रामवासी कहाँ-तक बड़े हो सकेंगे, क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि 'गांवके गवार'। वे लोग सदा यह समझते हैं कि गाँवमें सदा भैंस, बैल और भेड़का साथ रहता है। हल, मूसल, कुदाल और ऊखल आदिके अतिरिक्त और कुछ देखनेको नहीं रहता, अतः ऐसी संगतिमें रहनेवाला क्या उन्नतिकी योग्यता रख सकता है ? यह योग्यता नगर-निवासोमें ही आ सकती है, जहां सब प्रकारके पदार्थोंके देखनेका अवसर रहता है। परन्तु यह उलटी बात है। नागरिक घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनसे मनुष्यकी मनुष्यता अवनत होती

हैं न कि उन्नत । कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े नगरोंके निवासियों-पर कामका ऐसा चक्कर आता है कि उनके हृदयको क्षणमात्रका भी अवसर नहीं मिलता । प्रति क्षण सैकड़ों कार्य और घटनाएँ सिरपर गरजा करती हैं । नाना प्रकारके सुख-दुःखोंकी परम्पराओंके स्रोत प्रवाहित रहते हैं । चिन्ताकी राक्षसी सदा छाती-पर पाँव धरे ही रहती है । इन घटनाओंमें किसीका आरम्भ और किसीका अन्त ओत-प्रोत होकर ऐसा महाजाल बन जाता है, कि उससे जी ज्यों-ज्यों सुलझना चाहता है, त्यों-त्यों और भी उलझा ही जाता है । बस, रातको चिन्ताओंके सपने देखते-देखते प्रातःकाल हुआ । चारों ओरके जन-रव और सड़ककी गाड़ियोंकी घर्राटोंसे नींद खुली । प्रकाशकी चमक देखनेके पहले ही झमक-कर कामोंकी धमक मस्तिष्कमें जा पहुँची और लगा जी उसमें चक्कर खाने । यदि टहलनेका नाटक करना हुआ तो पहले तो इस कल्पित सभ्यताकी रक्षाके लिये अगको ऐसा लपेटा कि प्रातःकालकी पवित्र हवा आलिंगन कर आनन्दित करने न पावे । फिर एक पतली-सी सुटकुनियां हाथमें ली जो न तो अपना बोझ सम्हाल सके और न शत्रुको हटा सके, फिर पैर खटखटाते निकल पड़े तो आती जाती गाड़ियोंसे बचते, सड़क झाड़ते हुए मंखोड़ झाड़ूदारोंकी झाड़ी धूलकी रेणुकाओंको पलक और भौंहोंपर रमाते, मेहतरोंकी बगलोंसे सटते और ऊंचे-ऊंचे गृहोंकी मलीन जड़ोंके समीपसे यात्रा करते चले आये और यह प्रथम अभिनय समाप्त किया । घरमें घुसते ही पुरानी चिट्ठी-पत्रियोंका उत्तर घसीटने बैठे और धमसे नई डाक आ पहुँची । बस, अब कोई चिट्ठी हंसाने लगी कोई रुलाने लगी । किसी चिट्ठीने कोई काम समाप्त किया और किसीने नये कामकी टांग पसारी । अब इतना काम फैल गया कि लड़का भी सामने आवे तो दुरदुराया जाता है और स्त्री भी कुछ बोलना चाहे तो उसे अवसर नहीं

दिया जाता। योंही चटपट और काम कर खाने-पीनेका भी प्रहसन कर लिया जाता है पर उसमें मन कहीं और हाथ कहीं। अब अपने प्रधान कार्यालयोंपर परिकर कसे गये और बातकी-बातमें दिन समाप्त। थके-माँदे कुछ टहले, कुछ संवाद-पत्र पढ़े, कुछ हा-हा ही-ही की, कुछ झंझट देखें सुने और महाकार्य-जालकी चिन्तामें चित्तको चक्कर खिलाते सोये, बस, जैसे उत्तुङ्ग-तरङ्गसे तरंगित महासमुद्रके पर्वत-कूलपर नहानेवालेको जल-क्रीडाका कुछ आनन्द नहीं मिलता, किन्तु झकोरोंसे ही प्राण बचाते समय जाता है, वैसे नागरिकोंको जीवनका कुछ भी आनन्द नहीं मिलता, किन्तु कार्य-प्रवाहके धक्के ही बचाते प्राण जाते हैं।

जो ग्राममें रहते हैं उनके कानोंमें गाड़ीके घर्राटोंके और जन-कलकलके धड्के नहीं रहते, स्वच्छन्द विहार करते शुक-पिक-मयूरोंकी कुहुकोंकी मधुरता छायी रहती है। वे घर बैठे ही पुष्पोंकी परागोंसे पीत मकरन्द-कणोंसे आर्द्र मंद-मन्द चलती हवाका आनन्द उठाते हैं। वे स्वभाव-सिद्ध ही वनस्पतियोंकी सुगन्धसे सुगन्धित रहते हैं। वे जिधर ही दृष्टि डालें उधर ही कहीं पके आमोंके बोझसे झुकी हुई डाल देख पड़ेगी और कहीं जामुन चुआते वृक्ष देख पड़ेंगे। जहाँ तक दृष्टि जाय वहाँतक धानोंसे तरंगित खेत और कहीं खिले कमलोंसे व्याप्त सरोवर देख पडेंगे। धारोष्ण-दुग्ध, उसी क्षणका मथके निकाला मक्खन तथा टटके फल और शाकका स्वाभाविक भोजन है। शारीरिक परिश्रम उनका नित्य-कर्म है। कृषि-कर्म और आकाशकी वृष्टिके फल देखते-देखते उद्योग और दैवका माहात्म्य उन्हें सीखना नहीं पडता। उनके शरीरमें सुकुमारताका रोग नहीं रहता, जिससे बिना गुलगुले गद्दी–तकियोंके सो ही न सकें

और घाममे निकले तो सिर-पीड़ा और बरसातमें भींगें तो सन्धि-पीड़ा। उनका दीपक प्रबल रहता है, अंगोमें शक्ति रहती है, वे चिरंजीवी होते हैं। इन्हीं कारणोसे उदार-चरित और महापुरुष होनेके योग्य उनका मस्तिष्क रहता है। अतएव नागरिक बड़ी शिक्षापर भी उतना बड़ा पुरुष नहीं होता, जितना दिहाती पुरुष थोड़े समय शिक्षा पानेसे ही हो सकता है। हा, यह दूसरी बात है कि अन्यान्य घटनाओंके विषयमें नागरिककी बहुज्ञता रहती है और दिहातीकी नहीं। पर साथही साथ यह भी है कि नगरोमे जैसे लौकिक बहुज्ञता सम्पादक, कहीं धूम-धामके व्यापारवाले गुदाम और बाजार रहते हैं, कहीं बड़ी-बड़ी नाट्यशालाओंमें नाटकाभिनय होते हैं, कहीं घुड़दौड़ और मेले होते हैं, कहीं इन्द्रजाल, खेल, संगीत और नृत्य होते हैं परन्तु वैसे ही कहीं नित्य चोरी, मारपीटके हल्ले, कहीं ठग और धूर्तोंके बखेड़े आदि ऐसी घटनाएं भी होती हैं, जो वृत्तियों को बिगाड़ें और धूर्त्तताके अकुर जमावें। लोग सीधे-साधे दिहातीको दिहाती कह दुरदुरा देते हैं। पर जैसे दिहाती पदसे यह झलकता है कि लौकिक विषयोमे चतुर नहीं, वैसे ही यह भी झलकता है कि वह सीधा, सच्चा, निष्कपट और सज्जन है। तिरहुतका एक इतिहास प्रसिद्ध है कि किसी समय वहांके महाराजने एक पण्डितजीसे पूछा, कि अभी सूर्य उत्तरायण हुए कि नहीं, पडितने कहा कि पंचांग देखकर कहूंगा। तबतक एक कोनेमे एक कुम्हार खड़ा था, वह बोल उठा कि महाराज उत्तरायण हो गया। पंडितने उपेक्षापूर्वक कहा, कि तू क्या जाने, अभी न हुआ होगा। उसने कहा, उत्तरायण हो गया, इसमे कुछ भी सदेह नहीं। इतनेमे पंचाग मंगाया गया। पंडितजीने देखा तो विदित हुआ कि लगभग पन्द्रह दिन पूर्व

ही उत्तरायण हो चुका है। महाराज और पण्डितने उससे पूछा कि तू कैसे जान गया कि उत्तरायण हो गया है। उसने कहा कि मैं प्रतिदिन घड़े बना-बनाकर घाममें सुखाता हूं। वे पहलेकी अपेक्षा अब शीघ्रतासे सूख जाते हैं। यह सुन पंडित-जीने आश्चर्य किया और महाराजने उसे कहा कि तब तो तुम्हीं पंडित हो। कुम्हारके लिये महाराजके मुहसे जो पंडित शब्द निकला उसका ऐसा प्रभाव हुआ कि आजकल मिथिलामें कुम्हारमात्र पंडित कहलाते हैं, इत्यादि नाना उदाहरण हैं, जिनके द्वारा किसी-किसी विषयकी बुद्धिमत्ता ग्रामीणोंमें ही अधिक पाई जाती है। फलत इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि महापुरुष होनेकी योग्यता जैसी ग्रामीणोंमें होती है वैसी नगर-निवासियोंमें नहीं, क्योंकि दया, क्षमा, शील, विश्वास, श्रद्धा, निष्कपट, कृतज्ञता, गुणग्राहिता, परिश्रम, पारस्परिक स्नेह आदि गुण जिसमें रहते हैं, वही महापुरुष होनेका अधिकारी होता है।

अभ्यास

(१) ग्राम्य-जीवनसे नगर-जीवनमें क्या विशेषता है ?

(२) तुम ग्राम्य-जीवन और नगर-जीवनमें किसको पसन्द करते हो ?

(३) ग्राम्य-जीवनमें क्या-क्या विशेषताएं हैं ?

(४) ग्राम्य-जीवनमें शांतिका अनुभव क्यों होता है ?

(५) जीवनमें शांतिका महत्त्व ग्राममें अधिक क्यों सुगम है ?

(६) तुम ग्राम्य-जीवन और नगर-जीवनमें किसे उत्तम समझते हो ?

(७) वे क्या सुविधाएं हैं जो नगरमें सुलभ हैं किन्तु ग्राममें नहीं ?

(८) ग्राममें ऐसी कौन-कौनसी वस्तुएं हैं जो नगरमें निरन्तर अप्राप्य हैं ?

—०✻०—

२५—मुरझाया हुआ फूल

[ले०—महादेवी वर्मा]

(आप संयुक्त प्रांतकी कायस्थ महिला हैं। आप एम० ए० हैं। हिन्दीमें सरस और आदर्श कविता करनेमें आप सिद्धहस्त हैं। आपने 'नीहार' नामकी एक उत्तम पुस्तक लिखी है।)

था कलीके रूप शैशवमें, अहो सूखे सुमन।
हास्य करता था खिलाती, अङ्कमें तुझको पवन ॥ १ ॥
खिल गया जब पूर्ण तू, मंजुल सुकोमल पुष्पवर।
लुब्ध मधुके हेतु मँडराने, लगे उड़ने भ्रमर ॥ २ ॥
स्निग्ध किरणें चन्द्रकी, तुझको हंसाती थीं सदा।
ओस मुक्ता जालसे, शृङ्गारती थीं सर्वदा ॥ ३ ॥
वायु पंखा झल रही, निद्रा विवश करती तुझे।
यत्न माली का रहा, आनन्द से भरता तुझे ॥ ४ ॥
कर रहा अठखेलियां, इतरा सदा उद्यान में।
अन्तका यह दृश्य आया, था कभी क्या ध्यानमें ॥ ५ ॥
सो रहा अब तू धरा पर, शुष्क बिखराया हुआ।
गन्ध कोमलता नहीं, मुख-मंजु मुरझाया हुआ ॥ ६ ॥
आज तुझको देखकर, ग्राहक भ्रमर आता नहीं।
वृक्ष भी खोकर तुझे, हा! आँसु बरसाता नहीं ॥ ७ ॥
जिस पवनने अङ्कमें ले, प्यार था तुझको किया।
तीव्र झोंके से सुला, उसने तुझे भूपर दिया ॥ ८ ॥
कर दिया मधु और सौरभ, दान सारा एक दिन।
किन्तु रोता कौन है, तेरे लिये दानी सुमन ॥ ९ ॥
मत व्यथित हो पुष्प, किसको सुख दिया संसारने।
स्वार्थमय सबको बनाया, है यहाँ करतारने ॥ १० ॥

विश्वसे हे पुष्प ! तू सबके हृदय भाता रहा।
दान कर सर्वस्व फिर भी, हाय दुखाता रहा ॥११॥
जब न तेरी ही दशापर, दुख हुआ संसारको।
कौन रोयेगा सुमन, इससे मनुज निस्सारको ॥१२॥

अभ्यास

(१) इस पद्यमें क्या दार्शनिक भाव हैं ? समझाओ।
(२) फूलकी कौन-कौन सी तीन अवस्थाएँ हैं ? मनुष्यकी अवस्थाओंसे तुलना करो।
(३) ७ वें और ८ वें पदका भावार्थ समझाओ।
(४) 'किसको सुख दिया संसारने'। इन कथनकी पुष्टि करो।
(५) पर्यायवाची शब्द बतलाओ—
हास्य, स्वार्थ, अङ्क, शैशव, दानी, सौरभ।
(६) मडराना, इतराना, अठखेलिया करना, आसू बरसाना, इन मुहावरोंका अपनी भाषामें प्रयोग करो।
(७) इस पाठमें क्या शिक्षा दी गई है ? समझाओ।
(८) 'जब न तेरी ही दशापर दुख हुआ संसारको' की पद व्याख्या करो।
(९) तत्सम रूप बतलाओ —
दुखाता, मनुज, आहक, आसू।

२६—सर्व गुणाधार श्रीकृष्ण

[ले०—पं० जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदी]

(जन्म सं० १९३२ वि०, निवास-स्थान मलयपुर मुंगेर। चतुर्वेदीजी हिन्दीके अच्छे गद्य लेखकोंमें ऊँचा स्थान रखते हैं। आपके लेख तथा भाषण बड़े सरस तथा भावपूर्ण, व्यंग और हास्यरसमें ओत-प्रोत

होते हैं। इसके अतिरिक्त समालोचक भी हैं। आपके लिखे ग्रन्थोंमें अधिकांश साहित्यिक भाषण, समालोचना, नाटक, उपन्यास तथा काव्य हैं। चतुर्वेदीजी साहित्य रसिक, मधुरभाषी, हास्यरसके प्रेमी, मिलनसार और हिन्दी साहित्यके सच्चे सेवक हैं।)

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" यह अक्षरशः सत्य है। श्रीकृष्ण जैसा सर्वगुण सम्पन्न महापुरुष भारत क्या सारे संसारमें नहीं हुआ है। उनका कार्य-कलाप इसका प्रमाण है। श्रीकृष्ण जैसे साहसी वीर थे, वैसे ही संगीतके पारदर्शी। एक ओर गीताका ज्ञान तो दूसरी ओर वंशीकी तान, जिससे मनुष्य ही नहीं, पशु पक्षी भी मोहित हो गये। यह जैसे राजनीतिज्ञ थे, वैसे ही धर्मानुरागी भी, श्याम वर्ण होनेपर भी सौन्दर्यकी खान थे। इसीसे उनका दूसरा नाम श्यामसुन्दर भी है। दीन-दुखियोंपर दया करते, पर दुष्टोंके दमनमें देर भी नहीं करते थे। रास-क्रीड़ाके प्रेमी होकर भी योगेश्वर थे। सारांश यह कि वह सर्व-गुणाधार थे। उनका सतत ध्यान करनेसे मनुष्य-का कल्याण होता है। उन्हे भूल जानेसे हमारी यह दुर्गति है।

बंकिम बाबू अपने 'कृष्ण-चरित्र' मे लिखते हैं—"बचपनमें श्रीकृष्ण आदर्श बलवान थे। उस समय उन्होंने केवल शारी-रिक बलसे ही हिंसक जन्तुओंसे वृन्दावनकी रक्षा की थी। कंस और कंसके मल्लादिकोंको भी मार गिराया था। गो चरानेके समय ग्वाल-बालोंके साथ खेल-कूद और कसरत कर उन्होंने अपने शरीरिक बलकी वृद्धि कर ली थी। दौड़ने-मे काल यवन भी उन्हे न पा सका। कुरुक्षेत्र-युद्धमे उनके रथ हाँकनेकी भी बड़ी प्रशंसा है।"

शस्त्रास्त्रकी शिक्षा मिलनेपर वह क्षत्रिय-समाजमे सर्वश्रेष्ठ वीर समझे जाने लगे। उन्हे कभी कोई परास्त न कर सका।

कंस, जरासंध, शिशुपाल प्रभृति तत्कालीन प्रधान योद्धाओंसे, तथा काशी, कलिङ्ग, पौण्ड्रक, गान्धारादिके राजाओंसे वह लड़ गये और सबको उन्होने, परास्त किया। उन्हें कभी कोई न जीत सका। सात्यकि और अभिमन्यु उनके शिष्य थे। वह दोनो भी सहज ही हारनेवाले न थे। स्वयं अर्जुनने भी उनसे युद्धकी बारीकियाँ सीखी थीं।

श्रीकृष्ण योद्धा ही नहीं, अच्छे सेनापति भी थे। सेनापतित्व ही योद्धाका वास्तविक गुण है। उन्होंने अपनी मुट्ठीभर यादव-सेना लेकर जरासन्धकी अगणित सेनाको मथुरासे मार भगाया था। अपनी थोड़ीसी सेनासे जरासन्धका सामना करना असाध्य समझकर मथुरा छोड़ना, नया नगर बसानेके लिये द्वारिकाद्वीपको चुनना और उसके सामनेकी रैवतक पर्वतमालामें दुर्भेद्य दुर्ग बनाना, जिस रणनीतिज्ञताका परिचायक है, वह पुराणेतिहासके और किसी क्षत्रियमें नहीं देखी जाती है। श्रीकृष्णकी ज्ञानर्जनी-वृत्तियाँ सब ही विकासकी पराकाष्ठाको पहुँची हुई थीं। वह अद्वितीय वेदज्ञ थे, क्योंकि भीष्मने उन्हे अर्घ-प्रदान करनेका एक कारण यह भी बताया था। उनकी गीता तो अनन्त ज्ञानका भाण्डार है।

श्रीकृष्ण सबसे श्रेष्ठ और माननीय राजनीतिज्ञ थे। इसीसे युधिष्ठिरने वेदव्यासके कहनेपर भी श्रीकृष्णके परामर्श बिना राजसूय-यज्ञमें हाथ नहीं लगाया। जरासधको मारकर उसकी कैदसे राजाओंको छुड़ाना उन्नत राजनीतिका अति सुन्दर उदाहरण है। यह साम्राज्य स्थापनका बड़ा सहज परमोचित उपाय है।

श्रीकृष्णकी बुद्धिका विकास चरम सीमातक बढ़ा हुआ था। इसीसे वह सर्व-व्यापी, सर्व-दर्शी और सब उपायोंकी उद्भावना

करनेवाली थी। जिस अपूर्व आत्म-तत्व और धर्म-तत्वके आगे अबतक मनुष्यकी बुद्धि नहीं जा सकती, उससे लेकर चिकित्सा, संगीत और अश्व परिचर्यातक वह भली-भाँति जानते थे। उत्तराके मृत-पुत्रको जिलाना, उनकी चिकित्साका, वंशी-वादन उनके संगीतका और जयद्रथ-वधके दिन घोड़ोंकी चिकित्सा उनकी अश्व-परिचर्याका उदाहरण है।

श्रीकृष्णके साहस, फुर्ती और सब कामोंमें उनकी तत्परता-का परिचय पद-पदपर मिलता है। उनका धर्म तथा सत्य अचल था। ठौर-ठौर उनकी दयालुता और प्रेमका परिचय मिलता है।

बलाभिमानियोंकी अपेक्षा बलवान् होना भी लोकहित करना है। वह शान्तिके पुजारी थे और शान्तिके लिये दृढ़ताके साथ प्रयत्न करते थे। वह सबके हितैषी थे। केवल मनुष्योंपर ही नहीं, गोवत्सादि जीव-जन्तुओंपर भी दया करते थे। इसका पता गोवर्धन पूजासे लगता है। भागवतमें लिखा है कि वह बन्दरोंके लिये माखन चोरी करते और फल बेचनेवालोंके फल छीन लेते थे। वह अपने भाई-बन्धु कुटुम्ब-कबीलेके हितैषी थे, पर साथ ही उनके पापाचारी हो जानेपर वह उनके पूरे शत्रु बन जाते थे। वह क्षमाशील होनेपर भी जरूरत होनेपर पाषाण हृदय होकर दण्ड देते थे। वह स्वजन प्रिय थे, पर लोक-हितके लिये स्वजनोंके विनाश करनेमें भी कुण्ठित नहीं होते थे। कंस उनका मामा था। जैसे पाण्डव उनके भाई थे वैसे शिशुपाल भी था। दोनों ही उनके फूआके बेटे थे। उन्होंने मामा और भाईका मुलाहिजा न कर दोनोंको ही दण्ड दिया। फिर यादव लोग सुरापायी हो उद्दण्ड हो गये तो उन्होंने उन्हें भी अछूता नहीं छोड़ा।

श्रीकृष्ण सर्वदा और सर्वत्र सर्व-गुणोंके प्रकाशसे तेजस्वी

थे। वह अपराजेय, अपराजित, विशुद्ध, पुण्यमय, प्रेममय, दयामय, दृढ़कर्मा, धर्मात्मा, वेदज्ञ, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, लोकहितैषी, न्यायशील, क्षमाशील, निरपेक्ष, शास्त्री, निरहंकारी, योगी और तपस्वी थे। वह मानुषीशक्तिसे कार्य करते थे, परंतु उनका चरित्र अमानुषिक था। अब पाठक ही अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार इसका निर्णय कर लें कि जिसकी शक्ति मानुषी, पर चरित्र मनुष्यातीत था, वह पुरुष मनुष्य है या ईश्वर। जो श्रीकृष्णको निरा मनुष्य ही समझे, वह उन्हे कमसे कम महापुरुष और महाज्ञानी ही माने और जिसे श्रीकृष्णके चरित्रमें ईश्वरका प्रभाव दिखाई दे, वह मेरे साथ हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहे—और कोई कहे चाहे नहीं पर मैं तो कहता हूं—

जाहि देखि चाहत नहीं, कछु देखन मन मोर।
बसै सदा मेरे दृगन, सोई नन्दकिशोर॥

बस यही कामना है, यही इच्छा है, यही अभिलाषा है और यही आकांक्षा है।

अभ्यास

(१) सरल भाषामें अर्थ समझाओ—

कार्यकलाप, समावेश न होना, राजनीतिज्ञ, योगेश्वर, सर्वगुणाधार, दुर्भेद्य, सर्वदर्शी, अमानुषिक, मनुष्यातीत, निरपेक्ष, अध्यात्मतत्व।

(२) समास बतलाओ—

धर्मानुरागी, पाषाण-हृदय, अस्त्रपरिचर्या, बलाभिमानी।

(३) सौन्दर्य, तत्परता; दयालुता संज्ञाओंका पद-परिचय करो तथा इनमें गुणवाचक संज्ञा बताओ।

(४) श्रीकृष्ण भगवान् संसारके लिये आदर्श व्यक्ति क्यों हैं?

(५) श्रीकृष्णके बालकपनका जीवन अनुकरणीय है या नहीं? यदि है तो क्यों?

२७—भारत-वन्दन।

[ले०—पण्डित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन']

(जन्म भाद्र कृष्ण ६ स० १९१२ वि०, स्वर्गारोहण स० १९८० वि०, जन्मस्थान मिर्जापुर। आप कट्टर सनातन धर्मावलम्बी, हिन्दू-धर्मके परिपोषक, स्वदेशप्रेमी, रसिक हृदय कवि थे। आप हिन्दी, फारसी और संस्कृतके अच्छे पण्डित थे और भारतेन्दुजीके सखा थे। आपकी कविताओं-में आपकी प्रतिभा स्पष्ट रूपसे झलकती है। सन् १९१२ ई० में आप कल-कत्तेमें होनेवाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति हुए थे।)

जय जय भारत-भूमि भवानी।
जाकी सुयश पताका जगके दसहूं दिसि फहरानी।
सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सोहानी ॥१॥
जा श्री शोभा लखि अलका अरु अमरावती खिसानी।
धर्म सूर जित उयो निति जहँ गई प्रथम पहिचानी ॥२॥
सकल कला गुन सहित सभ्यता जहंसो सबहिं सुझानी।
भये असंख्य जहाँ जोगी तापस ऋषिवर मुनि ज्ञानी ॥३॥
विविध विप्र विज्ञान सकल विद्या जिनते जग जानी।
जग विजयी नृप रहे कबहुँ जहं न्याय निरत गुनखानी ॥४॥
जिन प्रताप सुर असुरनहू की हिम्मत विनसि बिलानी।
कालहु सम अरि तृन समुझत जहं के क्षत्री अभिमानी ॥५॥
वीर बधू बुध जननि रही लाखन जित सती सयानी।
कोटि कोटि जित कोटि पती रत बनित बनिक धनदानी ॥६॥
सेवत शिल्प यथोचित सेवा सूद समृद्धि बढ़ानी।
जाको अन्न खाय ऐंड़ति जग जाति अनेक अघानी ॥७॥
जाकी सम्पति लूटत हजारन बरसनहूं न खोटानी।
सहस सहस बरिसन दुख नित नव जो न ग्लानि उर आनी ॥८॥

धन्य धन्य पूरब सम जगनृप गन मन अजहुँ लोभानी।
प्रनमत तीस कोटि जन अजहूं जाहि जोरि जुग पानी ॥९॥
जिनमैं झलक एकताकी लखि जगमति सहमि सकानी।
ईश कृपा लहि बहुरि 'प्रेमघन' बनहु सोई छवि छानी ॥१०॥
सोइ प्रताप गुण जन गर्वित ह्वै भरी पुरी धनधानी।

अभ्यास

(१) कविका स्वदेश-प्रेम इस पद्यके आधारपर समझाओ।
(२) 'वीरवधू····· सती सयानी' का भावार्थ समझाओ।
(३) 'सकल कला··· · मुनि ज्ञानी' का अन्वय करो।
(४) सुयशपताका, असंख्य, विबुध, विलानी, जुगपानी, अलका, अमरावती के शब्दार्थ बताओ।
(५) भारत-गरिमापर एक छोटा निबन्ध तैयार करो।
(६) इस पद्यको पढ़कर तुम्हारे हृदयमें क्या भाव जागरित होते हैं?

—० ०—

२८—वीरता

[संकलित]

वीरत्व संसारमें एक अमूल्य रत्न है। इसका आविर्भाव उत्साहसे होता है। साहित्य-शास्त्रमें उत्साह ही इसका स्थायी भाव माना गया है अर्थात् बिना उत्साहके यह कभी स्थिर नहीं हो सकता। जिस पुरुषमें किसी प्रकारका उत्साह नहीं है, वह किसी बातमें कभी वीरता नहीं दिखला सकता। यह एक ऐसा गुण है कि जिसे न केवल वीर वरन् कादर भी सम्मानकी दृष्टिसे देखता है। वीरसे बढ़कर सर्वप्रिय कोई नहीं होता और संसार-पर वीरताका जितना प्रभाव पड़ता है उतना प्रायः और किसी

गुणका नहीं। सत्य आदि भी बड़े अनमोल गुण हैं; किंतु जितना आकस्मिक और रोमांचकारी प्रभाव वीरत्वका पड़ेगा, उतना सत्य आदिका कभी न पड़ेगा। इसलिये वीरत्वमे जुगमोहिनी शक्ति सभी अन्य गुणोसे श्रेष्ठतर है और यह कीर्तिका सबसे बड़ा वद्र्धक है। कादरता और भयसे इसका सहज विरोध है। कादरतामे तिलमात्र आकर्पण-शक्ति तथा भयमे कुछ भी प्रीति-योग्य नहीं है। कादरताका कोई अंश किसीका चित्त अपनी ओर आकृष्ट नहीं करेगा और भयमे कोई ऐसा अंश नहीं है जो किसीका प्रीतिभाजन हो सके। वीरत्वको बहुत लोगोने सामर्थ्य-मे मिला रखा है, किन्तु इन दोनोमे कोई मुख्य सम्बन्ध नहीं है। सामर्थ्य केवल इतना ही करती है कि वीरत्वकी महिमा बढ़ा देती है। यदि वीर पुरुष बलहीन हुआ तो उसकी वीरता वैसी नहीं जगमगाती जैसी कि बलवान् वीरकी। यदि हनुमानजी समुद्र न उल्लंघन कर गये होते तो भी उतने ही बड़े वीर होते जितने कि अब माने जाते हैं, किंतु उनके महावीरत्वको चमकाने-वाले उदधि उल्लंघन और द्रोणाचल-आनयनके ही कार्य हुए। वीरत्व और पराक्रममे इतना ही भेद है। वास्तविक वीरत्वका मुख्य आधार शारीरिक बल न होकर मानसिक बल है, जिसे इच्छा-शक्ति कहते है। इस शक्तिका वेग कोई नहीं रोक सकता। एक पुरुषकी उद्दाम इच्छा-शक्तिसे पूरी सेनामे पुरुषत्व आ सकता है और एक कादर कभी-कभी पूरे दलकी कादरताका कारण हो जाता है। शरीरका वास्तविक राजा मन ही है। इसीकी आज्ञासे शरीर तिल-तिल कट जानेसे मुंह नहीं मोड़ता और इसीकी आज्ञासे एक पत्तेके खड़कनेसे भी भाग खड़ा होता है। बुद्धि, अनुभव आदि इसके शिक्षक है। येहीं सब मिलकर इसे जैसा बनाते हैं, वैसा ही यह बनता है। इच्छा इसी शिक्षित वा

अशिक्षित मनकी आज्ञा है। मन जितना ही दृढ़ अथवा डाँवा-डोल होगा, उसकी आज्ञा (इच्छा , वैसी ही पुष्ट अथवा शिथिल होगी। जिसका मन जितना ही शिक्षित और स्ववश है, उसीकी इच्छामें वज्रवत् दृढ़ता होगी। बिना ऐसी इच्छा-शक्तिके कोई पुरुष पूरा वीर नहीं हो सकता। इसलिये दृढ़ता वीरत्वकी सबसे बड़ी पोषिका है। जिसका मन उचित काम करनेसे तिलमात्र चलायमान होता ही नहीं और जो अनुचित कार्य देखकर बिना उसे ठीक किये नहीं रह सकता, वही सच्चा वीर कहलावेगा।

वीरत्वका द्वितीय पोषक न्याय है। बिना इसके वीरत्व शुद्ध एवं प्रशंसा सुपद नहीं होता। न्यायके ठीक होनेके लिये बुद्धिकी आवश्यकता है, और साधारण न्यायको उदारतासे अच्छी कांति प्राप्त होती है। अतः वीरताके लिये न्यायशीलता उदारता और बुद्धिकी सदैव आवश्यकता रहती है।

सच्चे वीरको अन्याय कभी सह्य न होगा। हमारे यहां वीरता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण भगवान रामचन्द्रका है। इन्हींको महा कवि भवभूतिने महावीरकी उपाधिसे भूषित करके महावीर चरित्रके नामसे इनकी जीवनी एक नाटकमें लिखी है। दण्ड-कारण्यमें जिस समय आपने निशाचरों द्वारा भक्षित ब्राह्मणों-की अस्थियोंका समूह निरीक्षण किया तो तुरत—

"निसिचर-हीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन्ह"

यही उत्साहका परमोज्ज्वल उदाहरण था जो आपने निशा-चरोंसे बिना कोई वैर हुए भी दिखलाया। समय पर आपने यह कठिन प्रण सत्य करके दिखला दिया। इनकी इच्छा लोहेके समान पुष्ट थी जो एक बार जाग्रत होने पर फिर दब नहीं सकती थी। इच्छा और कर्ममें कार्य कारणका सम्बन्ध है। कारण शिथिल होनेसे कार्यका होना कठिन होता है। कहते है कि बिना

दृढ़ इच्छाके सदसद्विवेकिनी बुद्धिकी आज्ञा अरण्यरोदन हो जाती है। शुभ कार्यारंभके विषयमें कहा है कि विघ्न भयसे अधम पुरुष किसी शुभ कार्यका प्रारम्भ ही नहीं करते और मध्यम श्रेणीके लोग प्रारम्भ करके भी विघ्न पड़ने पर उसे छोड़ बैठते हैं, किन्तु उत्तम प्रकृति वाले हजार विघ्नोंको दबाकर एक बारका प्रारम्भ किया हुआ शुभ कार्य पूरा करके ही छोड़ते हैं। सत्य निष्ठा भी शौर्य के लिये एक आवश्यक गुण है। वीर पुरुष लोभको सदैव रोकेगा, ईमानदारीका आदर करेगा, असत्य भाषणसे बचेगा और अपना वास्तविक रूप छोड़कर कोई कल्पित भाव अथवा गुण प्रकट करनेकी स्वप्नमें भी चेष्टा नहीं करेगा। बहुधा संसार-में साधारण पुरुष लोक मान्यताके लालचमें सिद्धांतोंको भंग करते हुए देखे गये हैं। सिद्धांत प्रिय पुरुष माने जानेकी इच्छा लोगोंकी ऐसी बलवती देखी गई है कि लोगो द्वारा सिद्धांती माने जानेके लिये वे सबसे बड़े सिद्धांतको हंसते हुए चकनाचूर कर देंगे।

जो लोकमान्यताके लोभके सिद्धांत भंग करनेको तैयार नहीं है वह पुरुष सच्चा वीर कहलानेके योग्य है। इस वीरत्व का परमोत्कृष्ट उदाहरण हमारे उपनिषदोंमें सत्य काम-जाबालका मिलता है। जब यह पुरुष रत्न अपने गुरुके पास विद्याध्ययनार्थ उपस्थित हुआ, तब उन्होंने इनके माता-पिताका नाम पूछा। सत्यकामने माताका नाम तो जबाला बतला दिया किन्तु पिता-विषयक प्रश्नका यही सीधा उत्तर दिया कि मेरा पिता अज्ञात है; क्योंकि एक बार मेरे पूछने पर मेरी माताने कहा था कि मैं नहीं कह सकती कि तू किसका पुत्र है। इस उत्तरको सुनकर सत्यकामका गुरु अवाक् रह गया, किन्तु भावी शिष्यकी सत्य प्रियतासे सन्तुष्ट होकर उसने आज्ञा दी कि तू ही सत्य प्रियताके

कारण अध्यात्म-विद्याका सर्वोत्कृष्ट अधिकारी है। इतना कह-कर गुरुने उसे शिष्य किया और सत्यकामका जाबाल नाम रख उसे अपने शिष्योंसे श्रेष्ठतर माना। समय पर यही सत्यवादी पुरुष ब्रह्म विद्याका सर्वोत्कृष्ट पण्डित हुआ। यह पुरुष-रत्न सत्य-का अवतार था। इसका मन निर्मल था और इसका वर्ताव उच्च था। इन्हीं बातोंसे एक जारज पुरुष होकर भी यह ब्रह्म-विद्याका सबसे ऊंचा अधिकारी हुआ। इसलिये कहा गया है कि मन और वर्ताव ही मिलकर मनुष्य का चरित्र बनाते हैं।

वीरत्वका सर्वश्रेष्ठ समय बाल-वय है। जितना उत्साह मनुष्यमें इस अमूल्य-काल में होता है, उतना और किसी समय नहीं होता। श्लाघ्य चरित्रवान् मनुष्यको एक बालक जितना बड़ा मान सकता है उतना कोई दूसरा कभी न मानेगा। बाल-वयमें मन सफेद कागजकी भांति होता है। इसपर सुगमता-पूर्वक जो चाहे, लिख सकते हैं। उदार चरितावलीमें वीर-पूजनका भाव अधिकतासे होता है और ऐसा पुरुष किसी-न-किसीको श्लाघ्य एवं महावीर अवश्य मानता है।

केवल महानीचोंको ही संसारमें कोई श्लाघ्य नहीं समझता। जिसमें श्लाघ्य-चरित्र पूजनकी कामना बलवती होती है, उसमें वीरता कमसे कम बीज रूपसे रहती ही है। कदाचित् इन्हीं विचारोंसे हमारे यहां महावीर-पूजनकी रीति चलाई गई है। बिना दूसरोंके गुण-महत्व किये लोग प्रायः उदारचेता नहीं होते इसीलिये वीरोंमें कोमलता और उदारता प्राय साथ ही साथ पाई जाती है। प्रसन्नचित्त रहना भी इन्हीं बातोंका एक अंग है। कहा गया है कि बुराई रोकनेका पहला उपाय मानसिक प्रसन्नता ही है। बिना इसके बुराई रुक ही नहीं सकती। मानसिक प्रस-न्नताका प्रादुर्भाव प्रेम भावसे होता है। जिस व्यक्तिसे हम प्रेम

करेंगे वह बदलेमें हमसे भी प्रेम करेगा। इसलिये जो संसार प्रेमी होता है; उससे सारा संसार प्रेम करता है, जिससे वह सदैव प्रसन्न रहता है। ऐसी दशामें वह बुराई किसके साथ करेगा? प्राय. देखा गया है कि अपने साथ किसीकी खोटाई की जड़ कल्पना मात्र होती है। हम स्वयं असभ्यता कर बैठते हैं और जब दूसरा उसके बदलेमें हमारे साथ असभ्यता करता है तब हम आत्म-प्रेमसे अन्धे होकर समझ बैठते हैं कि वह निष्कारण हमारे साथ खोटाई करता है। इसलिये सम्भावित पुरुषको बुराईसे सदैव बचना उचित और क्षमासे अवश्य काम लेना चाहिये, क्योंकि बेजाने हुए भी हमारे द्वारा क्षमा-पात्रका अपकार हो जाना सम्भव है। खोटाई और विफलताका पहले ही से भय कदापि न करना चाहिये क्योंकि ऐसा करनेसे कोई इनको जीत नहीं सकता। इनके जीतनेका सबसे सुगम उपाय आशा ही है। इसलिये कहा गया है, कि आशा न छोड़ने वाला स्वभाव भी बहुत ही मूल्यवान् है।

स्वार्थ-त्याग वीरताका सबसे बड़ा भूषण है। दास भाव ग्रहण करके यदि कोई विवाह बन्धनमें पड़े तो उसके इस कर्त्तव्यमें कुछ-न-कुछ क्षति अवश्य पहुँचेगी। वीरवर हनुमानने जब भगवानका दासत्व ग्रहण किया तब आत्म-त्यागका ऐसा अतुल उदाहरण दिखाया कि जीवन पर्यन्त कभी विवाह ही न किया इधर भगवानने जब देखा कि उनकी प्रजा उनके द्वारा सीता ग्रहणके कारण उन्हे उच्चातिउच्च आदर्शसे गिरा हुआ समझती है, तब उन्होंने प्राणोपम अर्द्धांङ्गिनी सती सीता तकका त्याग करके अपने प्रजा-रंजन वाले ऊंचे कर्त्तव्यको हाथसे जाने नहीं दिया। बाल-वयसमें भी अपने पिताकी बेमनकी आज्ञा मानने तकसे भी उन्होंने तिलमात्र सङ्कोच नहीं किया। उन्होंने

यावज्जीवन स्वार्थ-त्याग और कर्त्तव्य पालनका ऊँचा आदर्श दिखलाया मानो वे सदेह कर्त्तव्य होकर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे।

कार्य-साफल्य तो साधारण दृष्टिसे वीरताका पोषक है, किन्तु दार्शनिक दृष्टिसे उसका शौर्यसे कोई सम्बन्ध नहीं है। दार्शनिक शुद्धता प्रत्येक वास्तविक वीर कर्ममें आ जाती है। चाहे वह तिलमात्र भी सफल न हुआ हो और साधारणसे साधारण पुरुष द्वारा संपादित हुआ हो। एक साधारण सैनिक जो अपने सेनापतिकी आज्ञासे मोरचे पर शरीर त्याग देता है, दार्शनिक दृष्टिसे बड़े विजयीके बराबर है। वीरताके मूल-सूत्र कर्त्तव्य-पालन और स्वार्थ त्याग है। बिना इनके कोई मनुष्य वास्तविक वीर नहीं हो सकता। एक बार दो रेलोंके भिड़ जानेसे एक एंजिन हाँकने वाला अपने एंजिनमें दबकर बायलरसे चिपक रहा, वह मृतप्राय था, किन्तु उसके होश-हवाश नहीं गये थे। इसलिये वह जानता था कि बायलर जल्दी फटकर उड़ेगा। जब और लोग उसे छुड़ानेके लिये प्रयत्न करने लगे, तब उसने उन सबको वहाँसे यह कहकर खदेड़ दिया कि मै तो मरा ही हूँ, तुम सब यहा प्राण देने क्यों आये हो? क्योंकि आपके बलसे बायलर अभी फटना चाहता है, जिससे सबके प्राण जायगे। मरणावस्थामे भी दूसरोंके लिये इतना ध्यान रखना वीरताका बड़ा लक्षण है।

अभ्यास

(१) रोमांचकारी, कायरता, पोषक, शौर्य, सर्वोत्कृष्ट, जारज, खोटाई, मोरचा और उपेक्षाका अर्थ बतलाओ।

(२) हमारे यहा वीर-चरित्र-पूजनकी रीति किस ध्येयको दृष्टिमे रखकर चलाई गई है?

(३) शुभ कार्यारम्भ करनेमें ससारके लोगोंको कितनी श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है ? समझाओ।

(४) जगमगाना, तिल-तिल कट जाना, पत्ता खड़कना, मोरचेपर जान देना मुहाविरोंको अपने वाक्योंमें प्रयोग करो ?

(५) वीरतासे क्या अभिप्राय समझते हो, वह किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है ?

(६) वीरता और साफल्य क्या दोनों एक हैं अथवा भिन्न ?

(७) श्रीरामचन्द्रजीकी वीरता क्यों सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है ?

(८) सन्धि-विच्छेद करोः—

जगन्मोहिनी, प्रशसास्पद, सर्वोत्कृष्ट।

२६—विपद्-स्वागत

[ले०—श्री देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल०-एल० बी०]

(जन्म फाल्गुन स० १९५० वि०, स्थान बनखेड़ी, जिला होशंगाबाद। आप वर्तमान कवियोंमें अच्छा स्थान रखते हैं। हिन्दी-उर्दू दोनों भाषाओंमें आप कविताएँ लिखते हैं। आपकी कविताएँ बड़ी भावमयी और सुन्दर होती हैं।)

[१]

तुमको पाया तभी खेल मैं, खूब निराले खेला हूँ,
आओ- प्यारी विपदा ! आओ, फिर मैं आज अकेला हूँ।
करो खूब आलिंगन मुझ-सा प्रेमी कहीं न पाओगी,
जितनी देर करोगी उतना तुम मनमे पछताओगी॥

[२]

आओ तुम संकोच छोड़कर किसी वेशमे आ जाओ,
शांति और सुख यहाँ नहीं है प्रिये ! न मनमे सरमाओ।

दोनों गये तुम्हारा सुनकर ही मेरे घर को आना,
मैंभवने भी हितकर सोचा उनके ही पीछे जाना ॥

[३]

लज्जा, विनय, शीलता अपनी सखियाँ साथ न तुम लाना,
कहना उनसे नम्र भावसे ठहरो तुम पीछे आना ।
जिससे क्रीड़ा समय न सम्मुख बाधा कुछ प्रस्तुत होवे,
अभिलाषाएँ पूरी होवें आलिंगन अद्भुत होवे ॥

[४]

बरसोंसे तुम मिली नहीं हो आत्म-शुद्धि करनेवाली.
दया-प्रेमके सद्भावोंको हृदयोंमें भरनेवाली ।
विरह-वेदना स्वार्थ-रूप वन मुझको नित्य सताती है.
चौंक-चौंक पड़ता हूं कह कह प्यारी विपदा आती है ॥

अभ्यास

(१) इस पद्यका भावार्थ बतलाओ ।

(२) कवि आपदाओंका क्यों स्वागत करना चाहता है ? चौथे पदसे स्पष्ट करो ।

(३) विपदा तथा सुख और शांतिमें क्या अन्तर है ?

(४) तीसरे छन्दका अर्थ बतलाओ ।

(५) लज्जा, विनय, शीलताको कवि विपदाके साथ क्या नहीं आने देना चाहता है ?

(६) शब्दार्थ बतलाओ —

निराले, क्रीडा, आलिङ्गन, विरह-वेदना, सद्भावों ।

(७) इस पद्यसे क्या शिक्षा मिलती है ?

(८) पद्यके मुख्य भावोंको समझाओ ।

३०—मत्स्य-देशमें पाण्डव

[ले०—श्रीयुत् पं० लालताप्रसाद सुकुल एम० ए०]

(आपका जन्म-स्थान बडनेरा-जिला अमरावती—निवास स्थान प्रयाग है। आपका जन्म ८ फरवरी १९०४ ई० को है। आपके पिता सिविल-सर्जन डाक्टर थे। आपने प्रयाग विश्वविद्यालयसे हिन्दी और अङ्गरेजी दो विषयोंमें एम० ए० किया है। आजकल कलकत्ता विश्वविद्यालयमें हिन्दीके अध्यापक हैं, आप बहुत ही योग्य और प्रतिभा-सम्पन्न पुरुष हैं। हिन्दी गद्यके अभ्यस्त लेखक हैं। आपके लेख सदा उच्च और गम्भीर होते हैं।)

कदाचित् भारतवर्षका प्रत्येक मनुष्य कुछ कुछ अंशोंतक रामायण और महाभारतकी कथाओंसे परिचित अवश्य है। उसके सम्मुख इनमेंसे किसी भी कथाका नाम लेना उसे चकित नहीं करता, वरन् वह उसके सुननेके लिये उत्सुक हो उठता है। इन ग्रन्थोंके विषयमें मनुष्योंकी भिन्न-भिन्न अनुमतियां हैं। कोई इन्हें एक बड़ा धर्म-ग्रन्थ समझता है, कोई केवल ऐतिहासिक घटनाओंका एक अच्छा खजाना। यदि इन्हें कोई राजनीतिका ग्रन्थ बताता है तो दूसरा एक ऊँचे दर्जेका साहित्य; परन्तु आश्चर्य तो यह है कि अपनी इन विविध प्रकारकी धारणाओंके लिये बहुधा वे निश्चित उत्तर नहीं दे सकते। इसका कारण यही है कि प्रायः ऐसे बहुत कम ही मनुष्य मिलेंगे जिन्होंने स्वयं पढ़ा हो और इनके गूढ़ स्थलोंपर विचार किया हो, अन्यथा औरोंका ज्ञान तो केवल श्रवण-प्रधान हुआ करता है।

कुछ भी हो, उनकी उपर्युक्त सम्मतियाँ अशुद्ध नहीं हैं। वास्तवमें इन दो ग्रन्थोंमें इन सभी विषयोंका पूर्ण समावेश है। इन सभी अंशोंसे वे परिपूर्ण है। यदि इनको इन विषयोंका ग्रन्थ कहा जाता है तो कुछ अनुचित नहीं।

आज अन्य विषयोंको छोड़कर हमें केवल नीतिकी दृष्टिसे ही महाभारतमें वर्णित एक घटना की जाँच करनी है। निस्सन्देह ऐसी-ऐसी घटनाएँ तो उसमें अगणित पड़ी हुई हैं, परन्तु हमें तो आज इसी एक घटनाकी जाँच अभीष्ट है।

अज्ञात-वासके लिये पाण्डवोंका द्रौपदी-सहित मत्स्य देशमें आना तो कदाचित महाभारतकी कथा से परिचित सभी मनुष्य जानते हैं इसलिये उसका यहाँ वर्णन करना व्यर्थ जान पड़ता है।

यहाँ पहुँचकर पांडवोंको इस बातकी चिन्ता हुई कि एक वर्ष तक किस प्रकार कालक्षेप किया जाय कि किसीको पता भी न लगे। निस्सन्देह यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा था। पहले तो द्रौपदीका साथ होना ही उनके मार्गमें एक बड़ी कठिनाई थी। द्रौपदी स्त्री होनेके कारण रनिवासके अतिरिक्त अन्य कहीं भी किसी कार्यके योग्य न थी। इसके अतिरिक्त इन्हें और भी अनेक आशंकाएं थीं कि कौरव लोग इनका पता लगाकर कहीं किसी गुप्त रीतिसे ही इनका अनिष्ट न करवा दें। अथवा महाराज विराटसे ही किसी भांति मिलकर इनको हानि न पहुँचा दें। ऐसी ही आशंकाओंके कारण उन्हें नीतिकी शरण लेनी पड़ी।

चारों ओरसे सुरक्षित रहनेके लिये उन्होंने जिस प्रकार कार्य करना निश्चित किया था वह निस्सन्देह सराहनीय था, उससे उन लोगोंकी नीति कुशलता भली भांति विदित हो जाती है।

महारानी द्रौपदीने, जैसा पहले कहा जा चुका है कि वे रनिवासके बाहर रहकर कोई भी कार्य नहीं कर सकती थीं, सैरन्ध्रिणी बनकर रहना स्वीकार किया था। यह कार्य राजकन्याओंके

यहां ऐसी स्त्रियोको दिया जाता था, जो देखनेमे सुन्दर होती थीं तथा अपनी बुद्धि विलक्षणता और पटुताके कारण मनोविनोद करनेमे कुशल होती थीं। सैरन्ध्रियोंको बहुत अधिक सेवाका कार्य नहीं करना पड़ता था।

यह कार्य तो उन्हें दे दिया गया, परन्तु प्रश्न यह था कि प्रासादके भीतर रहते हुए उनके मन तथा गौरवकी भली-भांति रक्षा कैसे हो सकेगी? यह प्रश्न कुछ अनुचित न था। क्योंकि ये पांचो भाई राज सभामे ही रहना स्वीकार कर लेते तो उस दशामें द्रोपदीसे भेंट करना उनके लिये यदि असम्भव नहीं तो कम से कम कठिन अवश्य ही हो जाता, जो सम्भव था कि अन्तमे हानिप्रद सिद्ध होता। क्योंकि, एक तो द्रोपदी स्वयं अत्यन्त सुन्दर थी, इसके अतिरिक्त विराट महाराजके साले कीचक इत्यादिकी वहां सत्ता तथा उनका आचरण पांडवो को भली भांति विदित था। बस, ऐसे ही अवसरों पर "रूपवती भार्य्या शत्रु:" की यथार्थता सिद्ध होती है।

अस्तु इस प्रकार द्रोपदीके सैरंध्रीका पद स्वीकार कर लेने पर यही उचित समझा गया कि पांडवोमेंसे एकको रनिवासके भीतर ही रहनेका प्रबंध करना चाहिये, इसके लिये अर्जुनके अतिरिक्त और कोई भी उपयुक्त न समझ पड़ा, क्योंकि रनिवासमें रहना तो उसीके लिये सम्भव था जो स्त्रियोका वेश धारण कर सकता। पांडवोमें केवल अर्जुन ही ऐसे थे जो नृत्य और गान-विद्यामें कुशल थे, इसके अतिरिक्त वे बलिष्ठ भी इतने थे कि द्रोपदीकी रक्षाका भार उनपर भली भांति रखा जा सकता था। अतः उन्होने स्त्रियोंका वेश धारण किया और 'वृहन्नला' के नामसे कुमारी उत्तराके समीप उसे नृत्य-गान सिखानेके बहाने रहने लगे।

किन्तु कठिनाइयोका अन्त वहीं न था। एक बड़ी आशङ्का यह भी थी कि कहीं राज्यमें इनका किसी भाँति उत्कर्ष देखकर कोई गुप्त रीतिसे इन्हे हानि न पहुँचा सके। वैसे शारीरिक बलमे तो ये लोग किसीसे भी कम न थे; परन्तु आशङ्का यह थी कि कहीं भोजन इत्यादि मे कोई विप न मिला दे। यह आशङ्का केवल वहींके मनुष्योंसे न थी, वरन् कौरवोकी ओरसे भी की जाती थी कि कदाचित् इनका समाचार उन्हे किसी भाँति ज्ञात हो जाय और वे इस प्रकारकी गुप्त वंचना करनेका प्रयत्न करें। साथ ही साथ यह तो सम्भव नहीं था कि सबके सब अपने भोजनका प्रबन्ध पृथक् पृथक् करें, क्योकि इसमे तो सन्देहकी आशङ्का थी और असुविधायें भी अनेक होतीं।

इसलिये इस कार्यका भार भीमको सौंपा गया, क्योंकि वे पाक क्रियामे बहुत कुशल थे। बस, इसी अभिप्रायसे भीमने पाकशालाका कार्य स्वीकार किया।

युधिष्ठिरके लिये कहा जाता है कि वे द्युत-क्रीडामे प्रवीण थे; इसलिये वे राजसभामे कार्य करनेके योग्य समझे गये। हाँ, ठीक है, यह तो था ही किन्तु इसमे अभिप्राय कुछ और ही था।

राजाओंके यहां जिन्हे जीवन विताना पडा है वे राजसभाके महत्वको तथा राज-सम्मानित पुरुषोंके गौरवको भलीभाँति जानते हैं। किसी भी राजाके यहाँ रहकर उसकी सभाके महत्वकी ओर ध्यान न रखना अनैतिक समझा गया है, क्योकि राज्यकी व्यवस्थाके सारे परामर्श राज्य-सभाको छोड़कर कहाँ हो सकते हैं? इसलिय पाण्डवोकेसे नीति-कुशल पुरुषोंके लिये सभाका ध्यान न रखना असम्भव था। परन्तु सभामे रहकर कार्यको सिद्ध कर लेना सबका कार्य नहीं है। केवल युधिष्ठिर जैसे सहनशील, दूरदर्शी, नीतिज्ञ पुरुप ही ऐसे जटिल कार्योंको कर

सकते थे। भीमसेनकेसे उग्र स्वभाववाले पुरुपका राजसभामें रहना लाभदायक न होता। इन उपर्युक्त गुणके अतिरिक्त एक विशेषता और यह थी कि वे द्युत-क्रीड़ामें भी निपुण थे। इसके द्वारा कार्य-साधनमे उन्हे और भी अधिक सुविधा होती थी, क्योंकि उस समय द्युत-क्रीड़ाका प्रेम राजाओमे व्यसन नहीं समझा जाता था। प्राय. सभी नृप इसमें कुशलता प्राप्त करनेका यत्न करते थे। बस, फिर क्या था? इस क्रीड़ामे विशेप कुशल होनेके कारण युधिष्ठिर एक साधारण सभासद ही न रहे, वरन् महाराज विराटके एक परम मित्र वन बैठे। इस प्रकार सभाकी ओरसे आशङ्कित अनिष्टोंसे छुटकारा मिला।

परन्तु पाण्डवोकी नीति-कुशलता यहीं समाप्त नहीं होती। अभी तो उन्हे अपनी रक्षाका सबसे बड़ा प्रबन्ध करना था। वह यह था कि किसी प्रकार कुछ बल भी अपने शासनमे होना आवश्यक है। केवल शारीरिक बलपर ही भरोसा करना समुचित न था। इसके अतिरिक्त अभी उनकी 'फ्राण्टियर पालिसी' की व्यवस्था होनी तो शेष ही थी। नकुल और सहदेवके द्वारा उसे भी पूर्ण करके वे अन्तमे निश्चिन्त हो सके।

बलके विषयमे तो प्रश्न यह था कि इतनी व्यवस्था हो चुकने पर पैदल सेना तो वशमे की ही नहीं जा सकती थी और न उससे कुछ अधिक लाभ ही था।

नकुल और सहदेव अश्व तथा अन्य जीवोकी विद्यामें अत्यन्त कुशल थे, इसलिये इनके द्वारा अश्वोको अपने अधीन कर लेना ही श्रेयस्कर जान पड़ा। अश्वोपर भी पाण्डवोका पूरा आधिपत्य हो जानेपर एक बार महाराज विराट स्वयं इन लोगोको हानि पहुँचाना चाहते तो भी नहीं पहुँचा सकते थे; क्योंकि अश्वोके विना केवल अश्व-सेना ही उनके हाथसे न निकल

जाती, वरन् उनकी रथ सेना भी व्यर्थ हो जाती, केवल रह जाते पैदल, जिनसे शङ्कित होने की आवश्यकता न थी। इस प्रकार अश्वोंपर नकुलका अधिकार हो जानेसे बलका प्रश्न तो सिद्ध हो गया। अब आई उनकी "फ्रांटियर-पालिसी।"

यों तो उस समय सभी नृप गौ और ब्राह्मणोंके भक्त हुआ करते थे और प्रायः सभी के यहाँ सहस्रों गायें पली रहती थीं, परन्तु महाराज विराट इसके लिए विशेष प्रख्यात थे। उनके यहां जितनी गायें थीं, उतनी किसी औरके यहाँ नहीं थीं। उन्हें गायोंसे कुछ भक्ति भी विशेष थी, इसलिए पांडवोंका कुछ अनिश्चित समाचार-सा पाकर जब कौरव उनका निश्चित रूप-से पता लगानेके लिए उत्सुक हुए थे, तब भीष्मने मत्स्यराज विराटकी अन्य किसी भी वस्तुके अपहरण करनेका परामर्श नहीं दिया, केवल गायोंका ही अपहरण करनेके लिए कहा ! क्योंकि यह तो मनुष्य स्वभाव है कि उसकी जितनी ही अधिक प्रिय वस्तु अपहरण की जायेगी उतना ही वह अधिक क्षुब्ध होगा। बस इसीलिये पितामह भीष्मने गायोंके अपहरण कर लेनेका परामर्श दिया था। वे जानते थे कि गाय ही महाराज विराटको सबसे अधिक प्रिय हैं। इसके अतिरिक्त एक और भी कारण था। महाराज विराटकी गायें जहां रखी जाती थीं, वह स्थान ठीक कौरवोंकी तथा मत्स्यदेशकी सरहद पर था, यद्यपि उसका निरीक्षण राजधानीसे ही होता था। इसी कारण कौरवोंको धेनु अपहरणमें सुविधा अधिक पड़ी और सरहदके कारण उन्हे कहनेके लिए अकारण ही एक कारण मिल गया।

सहदेवने इनका निरीक्षण स्वीकार किया था। इससे अभि-प्राय यही था कि गायोंके सरहद्पर रहनेके कारण इनके मनुष्य कौरवोंके राज्यका समाचार समय-समयपर दे सकेंगे। कौरवों-

के समाचारोसे परिचित रहना तो पांडवोंके लिए सदैव ही उचित और आवश्यक था।

इस प्रकार पाँचो पाण्डव द्रौपदी सहित अपनी अपनी योग्यताके अनुसार नीति-प्रदर्शित पथका अनुसरण करते हुए अपने-अपने पदोंपर नियुक्त हुए थे। यदि नीतिका वे लोग पदपदपर सहारा न लेते तो कदाचित सर्वप्रकार सुरक्षित रहनेमें वे सफल भी न हो सकते। यदि नीतिका प्रश्न ही न होता तो पांडव कौरवोके समीप रहनेकी न सोचते, वरन् दूर ही रहनेका प्रयत्न करते, परन्तु नहीं; उन्हें अपनी नीति कुशलतापर विश्वास था कि मत्स्यराजके यहां कौरवोंके इतने समीप रहते हुए भी वे सुरक्षित रह सकेंगे।

निस्सन्देह उनका वह विश्वास अनुचित न था। इसी नीतिके बलपर पांचो पांडवोंने जो कुछ चाहा, उसे सौ कौरवोंके विरुद्ध होते हुए भी पूर्ण ही कर डाला।

अभ्यास

(१) पाडवने अपने धर्मकी रक्षा कैसे की?

(२) द्रौपदीको किस प्रकार उन लोगोंने अपने साथ रखा।

(३) पाडवोकी वीरताके सबधमें क्या जानते हो?

(४) पाडव अत्यन्त राजनीति कुशल थे, इसका क्या प्रमाण है?

(५) पाडवोंने न्यायकी रक्षाके लिए क्या क्या प्रयत्न किये?

(६) इसका प्रमाण दो कि पाडव शातिके पुजारी और धर्मात्मा थे?

(७) पाडवोंके दु खमें श्रीकृष्ण भगवान्ने क्या सहायता दी?

३१—वीर शिवाजी

[संकलित]

जीती, जाती हुई जिन्होंने भारत बाजी।
है जग-जाहिर वही छत्र पति भूप शिवाजी॥
वीर-वंशमें स्वयं जन्म था जिस माताका।
वीर-कोखसे वीर उसीने जाया बाँका॥
वीरोचित कर्तव्य उसीने सुतका ताका।
अग्र शोचसे गिरी उसीके मुगल-पताका॥
राजपूतका रक्त मिला उसकी नस नसमें।
क्यों फिर आकर शक्ति न होती उसके वसमें॥
थे जिसके सवचरित अलौकिक बाल-वयसमें।
करता सभव क्यों न असम्भव वह साहसमें॥
दादाजी से वीर विप्रने जिसे पढ़ाया।
रामदासने जिसे धर्म-उपदेश सुनाया॥
वही शिवाजी वीर, वीर माताका जाया।
रहने देता भला कहीं निज देश पराया॥
देश, नाम, कुल, धर्म हिंदुओंका मिट जाता।
अपना शब्द पुनीत न कोई कहने पाता॥
आर्य्य गुणोंका गान कहाँ से कोई गाता।
यह अवतारी वीर न जो भारतमें आता॥
करके उसका ध्यान चित्त होता है चंचल।
जिसके कारण बँधा हिंदुओंका बिखरा बल॥
उसे अश्वपर देख फूल उठता था रण थल।
विकट मरहठे वीर जूझते थे दलके दल॥

दूर दूर जय ध्वजा शिवाजीने फहराई।
निज स्वतंत्रता गई हिन्दुओंने फिर पाई॥
एक बार फिर जन्मभूमि यह निज कहलाई।
राम-राज्यकी छटा दृष्टिमें फिरसे आई॥
सहे देशके लिए उन्होंने नाना संकट।
गिने न पगके कष्ट बाट भी लगी न ऊवट॥
पग-पग छिनछिन यदपि खड़ेथे सिरपर घातक।
तो भी उनका झुका न रिपुके आगे मस्तक॥
कठिन विपतमें भी न उन्होंने त्यागा धीरज।
गूढ़ अनूठी युक्ति सोच साधा निज-कारज॥
आपसका विश्वास दूसरे देशों को तज।
आ धरता था सीस मरहठेके पदकी रज॥
निज भुज बलसे शीघ्र राष्टको 'महा' बनाया।
हरद्वार, गुजरात, सेतु, जगदीश जगाया॥
वैश्योंको भी समर-भूमिका खेल दिखाया।
पलमें कर दी दूर परालम्बन की माया॥
राजनीति में रही शिवाजीकी चतुराई।
वैरी ने भी छिपे बड़ाई उनकी गाई॥
शूर-साधु, कवि गुणी इन्हे थे जीसे प्यारे।
दया, भक्ति, नय, शील रहे वे हियमें धारे॥
गुरु गो-द्विजके चरण प्रेमसे सदा पखारे।
किया न कोई काम बिना नृप धर्म विचारे॥
उचित यही है करें वीर-पूजा मिल हम सब।
यही धर्म है सत्य, यही है सच्चा करतब॥

अभ्यास

(१) शिवाजीकी वीरताके बारेमें तुम क्या जानते हो ?

(२) निम्नलिखित शब्दोंके शुद्ध रूप बतलाओ ?

यद्यपि, विपत, कारज, करतव ।

(३) मनुष्योंका सच्चा कर्त्तव्य क्या है ?

(४) निम्नलिखित शब्दोंमें कौन समास हैं ?

वीर-पूजा, नृप-धर्म, मुगल-पताका, बाल वयस ।

(५) दादाजीसे——सुनाया । इस पद्यका भावार्थ लिखो ।

(६) अवतारी, बिखरा, शीघ्र, राष्ट्र, धारे—ये व्याकरणसे क्या हैं ?

(७) जग-जाहिर, वीर-कोख, अनूठी, परालम्बन शब्दोंका अर्थ बताओ ।

(८) कठिन——निज कारज । इस पद्यका अन्वय करो ।

३२—चरितावली

महाकवि कालिदास

[ले०—भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र]

(जन्म भाद्र शुक्ल ७ स १९९७ वि०, स्वर्गवास स० १९४२ वि० जन्म स्थान काशी । आप वर्तमान हिन्दी-साहित्यके सर्वप्रथम महारथी हैं । हिन्दी-नाटक साहित्यके जन्मदाता भी आप ही हैं । आप बड़े ही साहित्य-रसिक, उदार, प्रेमी, सहृदय, तथा हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तानके सच्चे भक्त थे ।)

राजा विक्रमकी सभामें नौ रत्न थे । उनमेंसे एक कालिदास थे । कहते हैं कि लड़कपनमें इन्होंने कुछ भी नहीं पढ़ा-लिखा । केवल एक स्त्रीके कारण इन्हें अनमोल विद्याका धन हाथ लगा । इसकी कथा यों प्रसिद्ध है:—

(१) राजा शारदानन्दकी लड़की विद्योत्तमा बड़ी पंडिता थी । उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो मुझे शास्त्रार्थमें जीतेगा उसीको व्याहूंगी । उस राजकुमारीके रूप, यौवन और विद्याकी

प्रशंसा सुनकर दूर दूरसे पण्डित आते और शास्त्रार्थमें उससे हार जाते। जब पण्डितोंने देखा कि यह लड़की किसी तरह वश-मे नहीं आती और सबको हरा देती है, तब मनमें लज्जित होकर सबने एका किया कि किसी ढबसे विद्योत्तमाका विवाह किसी ऐसे मूर्खके साथ करावे, जिससे वह जन्मभर अपने घमंडपर पछताती रहे। निदान वे लोग मूर्खकी खोजमे निकले। जाते जाते देखा कि एक आदमी जिस पेड़के ऊपर बैठा है, उसीको जड़से काट रहा है। पण्डितोंने उसे महामूर्ख समझकर बड़ी आवभगतसे नीचे बुलाया और कहा कि चलो, हम तुम्हारा व्याह राजाकी लड़कीसे करा दें। पर खबरदार, राजाकी सभामें मुंहसे कुछ भी बात न कहना, जो बात करनी हो इशारेसे बताना। निदान जब वह राजाकी सभामें पहुँचा, तब जितने पण्डित वहां बैठे थे, सबने उठकर उसकी पूजाकी, ऊँची जगह बैठनेको दी और विद्योत्तमासे यह निवेदन किया कि ये बृहस्पतिके समान विद्वान हमारे गुरु आपको व्याहने आये हैं। परन्तु इन्होंने तपके लिये मौन साधन किया है। जो कुछ आपको शास्त्रार्थ करना हो इशारोसे कीजिये। निदान उस राजकुमारीने इस आशयसे कि ईश्वर एक है, एक उँगली उठाई। मूर्खने यह समझकर कि धमकानेके लिये उँगली दिखाकर एक आँख फोड़ने-का इशारा करती है, अपनी दो उँगलियाँ दिखलायीं। पंडितों-ने इन दो उँगलियोंके ऐसे अर्थ निकाले कि उस राजकुमारी-को हार माननी पड़ी और विवाह भी उसी समय हो गया, रातके समय जब दोनोंका एकान्तमे साक्षात्कार हुआ तब किसी तरफसे, एक ऊंट चिल्ला उठा। राजकन्याने पूछा कि यह क्या शोर है? मूर्ख तो कोई शब्द शुद्ध नहीं बोल सकता था, बोल उठा—'उट्र' चिल्लाता है और जब राजकुमारी ने दुहराकर

पूछा तब 'उट्र' की जगह उसट्र कहने लगा, पर शुद्ध रूप 'उष्ट्र' का उच्चारण न कर सका तब तो विद्योत्तमाको पण्डितोंकी दगाबाजी मालूम हुई और अपने धोखा खानेपर पछताकर फूट-फूटकर रोने लगी। यह मूर्ख भी अपने मनमे बड़ा लज्जित हुआ। पहले तो चाहा कि जान ही दे डालूँ, पर फिर सोच समझकर घरसे निकल विद्योपार्जनमे परिश्रम करने लगा और थोड़े ही दिनोंमे ऐसा पण्डित हो गया, जिसका नाम आजतक चला आता है। जब वह मूर्ख पण्डित होकर घरमे आया, उस समय जैसा आनन्द विद्योत्तमाके मनमे हुआ, लिखनेसे बाहर है। सच है, परिश्रमसे सब कुछ हो सकता है।

कालिदास बड़े चतुर पुरुष थे। उनकी चतुराईकी बहुत-सी कहानियाँ हैं और वे सब मनोरंजक हैं। उनमेसे कई एक ये हैं :—

(२) एक समय कालिदासके पास एक मूढ़ ब्राह्मण आया और कहने लगा कि कविराज, मैं बहुत दरिद्र हूं और मुझमें कुछ गुण भी नहीं है। मेरा आप कुछ उपकार करें तो भला होगा।

कालिदासने कहा—अच्छा, एक दिन हम तुमको राजाके पास ले चलेंगे, आगे तुम्हारी प्रारब्ध। परन्तु रीति है कि जब राजाके दर्शनके निमित्त जाते हैं तो कुछ भेंट ले जाया करते हैं। इसलिए जो ईखके चार टुकड़े देता हू सो ले चलो। ब्राह्मण घर लौटा और उन ईखके टुकड़ोंको उसने धोतीमे लपेट रखा। यह देख किसी ठगने उसके बिना जाने उन टुकड़ोंको निकाल लिया और उनके बदले लकड़ीके उतने ही टुकड़े बाँध दिये।

राजाके दर्शनोंको चलते समय ब्राह्मणने ईखके टुकड़ोंको नहीं देखा। जब सभामे पहुँचा तब इस काठको राजाको अर्पण

किया। राजा उसको देखते ही बहुत क्रोधित हुए। उस समय कालिदास पास ही थे। उन्होंने कहा, महाराज! इस ब्राह्मण-ने अपनी दरिद्रतारूपी लकड़ी आपके पास इसलिये लाकर रखी है कि उनको जलाकर इस ब्राह्मणको आप सुखी करें। यह बात कविके मुखसे सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने ब्राह्मणको बहुत धन दिया।

(३) एक समय कविवर कालिदास अपने मकानमें बैठकर अपने प्रिय पुत्रको अध्ययन कराते थे, उसी समय क्षत्रिय-कुल-भूषण शकारि विक्रमादित्य संयोगसे आ गये। कविवर कालि-दासने महाराजको देख, पढ़ाना छोड़ शिष्टाचारकी रीतिसे महा-राजका आदर-मान किया। जब महाराजने पढ़ानेकी प्रार्थना की तब फिर अध्ययन कराना प्रारम्भ किया। उस समय कविवर कालिदास अपने पुत्रको यही पढ़ाते थे कि राजा अपने देशमें ही मान पाता है और विद्वानका मान सब स्थानोंमे होता है। महा-राज इस प्रकारकी शिक्षाको सुनकर अपने मनमें कुतर्क करने लगे कि कविवर कालिदास ऐसे अभिमानी पण्डित हैं कि मेरे ही सामने पण्डितोकी बड़ाई करते हैं और राजाओ या धनवानोको वा मुझे नीचा दिखाते है। मै पण्डितोका विशेष आदर-मान करता हू और जो मेरे वा अन्य राजाओ वा धनवानोंके यहाँ पण्डितोका आदर नहीं हो तो कहाँ हो सकता है? ऐसा कुतर्क करते हुए राजा अपने घर गये।

महाराज विक्रमादित्यने कविवर कालिदासको जो धन संपत्ति दी थी, उसको हर लेनेके लिये मंत्रीको आज्ञा दी। मंत्रीने वैसाही किया, जैसा महाराजने कहा था। कविवर कालिदासकी जीविका जब हर ली गई तब दु:खी होकर वे अपने बाल-बच्चोंके साथ अनेक देशोमे भटकते हुए अंतमे करनाटक देशमे पहुँचे।

करनाटक देशाधिपति बड़े पण्डित और गुणग्राहक थे। उनके पास जाकर कविवर कालिदासने अपनी कविता-शक्ति दिखाई। उसपर करनाटक देशाधिपतिने अति प्रसन्न होकर बहुत-सा धन और भूमि देकर अपने राज्यमे उन्हें रखा। कविवर कालिदास राजा-से सम्मान पाकर उस देशमे रहकर प्रति दिन राज-सभामे जाने और वहां राजाके सिहासनके पास ऊंचे आसन पर बैठ सब राजकाजोमे सम्मति देने लगे और अनेक प्रकारकी कविताओसे सभासदोके मनकी कली खिलाते हुए सुखसे रहने लगे।

जबसे कविवर कालिदासको विक्रमादित्यने छोड़ा तबसे वे बडे शोकसागरमे डूबे थे। नवरत्नोमे कालिदास ही अनमोल रत्न थे। इसके सिवा जब राजाको राज-काजके कामोसे फुरसत मिलती थी, तब केवल कविवर कालिदासकी ही अद्भुत कविताओको सुन-कर उनका मन प्रफुल्लित होता था। इसलिये ऐसे गुणी मनुष्यके विना राजाका सब वस्तुओसे मन उदास होने लगा। फिर राजाने कविराज कालिदासका पता लगानेके लिये सब देशोमे दूतोको भेजा। जब कहीं पता न लगा तब राजा आपही भेष बदलकर खोजनेके लिये निकले। कई देशोमें घूमते-फिरते जब वे कर्नाटक देशमे गये, तब उनके पास पथ-व्ययके लिये हीरा जड़ी हुई एक अगूठीको छोड़कर और कुछ नहीं था। उस अंगूठीको वेचनेके लिये वे किसी जौहरीकी दूकान पर गये। रत्न-पारखीने ऐसे दरिद्र-के हाथमें ऐसी अनमोल रत्न-जड़ित अंगूठीको देखकर मनमे चोर समझा और कोतवालके पास भेजा। कोतवाल राजसभामे ले गया। वे चारो ओर देखते-भालते जो आगे बढ़े तो कविवर कालिदासको देखा और कहा—"महाराज, मैने जैसा किया वैसा ही फल पाया।" कविवर कालिदासने उठकर राजाको अङ्कमे लगाकर कर्नाटक देशाधिपतिसे परिचय कराया और सब ब्योरा

कहकर राजा वीर विक्रमादित्यके साथ चले आये।

४ कोई कोई कहते हैं कि कविवर कालिदास की सहायतासे एक ब्राह्मणने राजा भोजसे एक श्लोकपर अनेक रुपये इस चतुराईसे लिये थे :—

उज्जैन नगरीमें राजा भोज ऐसे विद्या-रसिक गुणज्ञ और दानशील थे कि विद्या प्रचारके निमित्त उन्होंने यह नियम प्रचलित किया था कि जो कोई नवीन आशयका श्लोक बनाकर लावे, उसको एक लाख रुपये दक्षिणा दी जाय। इस बातको सुनकर देशदेशान्तरके पण्डित लोग नये-नये आशयके श्लोक बनाकर लाते थे। परन्तु उनकी सभामें चार ऐसे पंडित कि एकको एक बार, दूसरेको दो बार, तीसरेको तीन बार और चौथेको चार बार सुननेसे नया श्लोक कण्ठस्थ हो जाता था। इससे जब कोई परदेशी पंडित राजा की सभा में नवीन आशयका श्लोक बनाकर लाता था, तब वह राजा के सम्मुख पढ़कर सुनाता था। उस समय राजा अपने पंडितोंसे पूछते थे कि यह श्लोक नया है या पुराना, तब वह मनुष्य जिसको एक बार सुनकर कंठस्थ हो जानेका अभ्यास था कहता कि यह पुराने आशयका है और आप भी पढ़कर सुना देता था। इसके अनन्तर वह मनुष्य जिसे दो बार सुननेसे कठस्थ हो जाता था, पढ़कर सुनाता और इसी प्रकार वह मनुष्य जिसको तीन बार और वह भी जिसको चार बार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था, क्रम से सब राजाको कठाग्र सुना देते। इस कारण परदेशी विद्वान् अपने मनोरथसे रहित हो जाते थे। इस बातकी चर्चा देशदेशान्तरोंमें फैल गई। परन्तु एक विद्वान ऐसा देशकालमें चतुर और बुद्धिमान निकला कि उसके बनाये हुए आशयको इन चार मनुष्योंको भी नवीन अङ्गीकार करना पड़ा और वह यह है कि हे तीनो लोकके जीतने-

वाले राजा भोज ! आपके पिता बड़े धर्मिष्ठ हुए हैं। उन्होंने मुझसे निन्नानवे करोड़का रत्न लिया है, सो मुझे आप दीजिये और इस वृतान्तको आपके सभासद विद्वान् जानते होंगे, उनसे पूछ लीजिये। जो वे कहें कि यह आशय केवल नवीन कविता मात्र है तो अपने प्रणके अनुसार एक लाख रुपया मुझे दीजिये। इस आशयको सुनकर चारों विद्वानोंने विचार किया कि यदि इसको पुराना आशय ठहरावें तो महाराजको निन्नानवे करोड द्रव्य देना पड़ता है और नवीन कहनेमें केवल एक लाख, सो उन चारोंने क्रमसे यही कहा कि पृथ्वीनाथ ! यह नवीन आशयका श्लोक है। इसपर राजाने उस विद्वानको एक लाख रुपया दिया।

अभ्यास

(१) पण्डितों को विद्योत्तमा से क्यों ईर्ष्या हुई ?

(२) कालिदासको कैसे विद्या लाभ हुआ ?

(३) विक्रमादित्यने कालिदासकी धन-सम्पत्ति क्यों हर ली थी ?

(४) 'राजा का सम्मान अपने राज्यमें और विद्वानका, सर्वत्र होता है' इस कथन की पुष्टि इस पाठ के आधार पर करो ?

(५) विद्वान ब्राह्मणने भोजसे एक लाख रुपया किस प्रकार प्राप्त किया ?

(६) समास बतलाओ :—

क्षत्रिय कुल-भूषण, शकारि, नवरत्न, देशाधिपति, अनमोलरत्न-जटित।

(७) शब्दार्थ बताओ :—

अध्ययन, विक्रम, प्रफुल्लित, अनमोल, विद्या-रसिक।

३३—गिरिधरकी कुण्डलियाँ

—०※०—

[ले०—गिरिधर कविराय]

(जन्म अनुमित स १७७० ? निवासस्थान अवधके आसपास । आपकी कुण्डलिया बहुत लोकप्रिय हैं, लौकिक विचारोंका इनमें प्रचुरतासे समावेश है। किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि जिन छन्दोंके आरम्भमें 'साईं' शब्दका प्रयोग हुआ है, वे उनकी स्त्री द्वारा लिखे गये हैं।)

(१)

मित्र बिछोहा अति कठिन, मत दीजै करतार।
वाके गुन जब चित चढ़ै, बरसत नयन अपार॥
बरसत नयन अपार, मेघ सावन झरिलाई।
अब बिछुरे कब मिलैं, कहो कैसी बनिआई॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो विनती एहा।
हे करतार दयाल देहु, जनि मित्र बिछोहा॥

(२)

साईं घोड़न के अछत, गदहन पायो राज।
कौआ लाजै हाथ मैं, दूरि कीजिये बाज॥
दूरि कीजिये बाज, राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिये कैद, स्यार गजराज चढ़ायो॥
कह गिरिधर कविराय, जहाँ यह बूझ बड़ाई।
तहाँ न कीजै भोर, सांझ उठि चलिये साईं॥

(३)

साईं अगर उजार मैं, जरत महा पछिताय।
गुन-गाहक कोऊ नहीं, जाहि सुवास सुहाय॥

जाहि सुवास सुहाय, सुने वनमे कोउ नाहीं।
कै गीदड़ कै हिरन सुनो, कछु जानत नाहीं॥
कह गिरिधर कविराय, बड़ो दुख है गुसाईं।
अगर आककी राख भई, मिलि एकै साईं॥

(४)

वगुला झपटत वाज पै, वाज रहे सिर नाय।
कुलहा दीन्हे पग वंधे, खोटे दै फहराय॥
खोटे दै फहराय, कहै जो जो मन आवै।
कुलहा लै पग छोरि, धनी विन कौन छुड़ावै॥
कह गिरिधर कविराय, अरे तू सुन खग वगुला।
समय पलट्यो जान, वाज पै झपटे वगुला॥

(५)

कौआ कहत मराल सों, कौन जातिको गोत।
तो सो वदरूपी महा, कोउ न जगमें होत॥
कोउ न जगमें होत, कुटिल मैले मलखाने।
उसर वैठ मर्य्याद-भ्रष्ट, आचार न जाने॥
कह गिरिधर कविराय, कहाँ ते आयो हौआ।
धन्य हमारो देश, जहाँ सज्जन जन कौआ॥

अभ्यास

(१) जिन छन्दोंमे साईं शब्दका प्रयोग हुआ है, उनके विषयमें तुम क्या जानते हो?

(२) दूसरे छन्दका अन्वय करो।

(३) तीसरे छन्दका भावार्थ समझाओ।

(४) शब्दार्थ बतलाओ :—

विछोह, करतार, सुवास, आक, मर्य्यादा-भ्रष्ट, मराल।

(५) "अगर-आककी राख भई मिलि एकै साईं" का भावार्थ बतलाओ।

(६) पद-विन्यास करो:—

बगुला झपटत बाज पै बाज रहे सिर नाय।

(७) इस पाठके विशेष्य और विशेषणोंको चुनो।

(८) कौआ कहत·········ते आयो हौआ।

उक्त पद्यके मुख्य भावपर एक निबन्ध तैयार करो।

३४—वीर-जननी-राजस्थान

(संकलित)

यदि संसारमें कोई ऐसी वीर-जननी वीर-भूमि है, जहांकी चप्पा-चप्पा जमीन वीरताकी सरगुजिश्त हो और जहां जगह-जगह वीरोंके कारनामोंसे पवित्र और अमर बनी हुई नदियाँ और उपत्यकाएं वीरोंके शहीद होनेकी गवाही देती हो, तो वह हमारी जननी-जन्मभूमि भारतवर्षका गौरव राजस्थान है। स्पार्टावालोंकी बहादुरी, रोमन लोगोंकी वीरता, तुर्कोंकी निडरता, वीर-जननी-राजस्थानके सम्मुख कोई वकअत नहीं रखती। यदि स्वाधीनताके साक्षात् अवतारके चरण-कमलकी पवित्र रज कहीं मिल सकती है, तो वह हमारी गौरव स्थापिनी मेवाड़ भूमि ही है। भारतवर्षका चमचमाता हुआ सूर्य, महाराणा प्रताप, जिसने सारे संसारको दिखला दिया कि स्वाधीनताके मुकाबिलेमें राज-पाट धन-दौलत, महलोंके ऐशो-आरामकी कोई कीमत नहीं—वह स्वाभिमानकी प्रतिमूर्ति राणा प्रताप, जिसको अपने जिगरके टुकड़े, महलोंमें पले हुए राजकुमार और राजकुमारीका कांटेदार जंगलो और नुकीले पत्थरोंके बीच मारे-मारे फिरते

और भूख-प्याससे विलखते हुए देखनेका हृदय-विदारक दृश्य भी विदेशियोंके सामने सिर झुकानेपर मजबूर न कर सका, इसी वीर-जननी मेवाड़-भूमिकी पवित्र गोदमें खेला था। यही वह भूमि है, जहाँ आत्म-सम्मानकी प्रतिमूर्ति वाके अमरसिंह राठौरने संसारको व्रता दिया कि राजसूथानके वीरोंका खून मौतके डरसे भी अपमान सहन नहीं कर सकता। आह! इस भूमिके जलमें वह तासीर थी कि इसके छोटे-छोटे बालक भी देशपर मरना अहोभाग्य समझते थे। इसीकी वायुमें वह तेज था कि जिसने बारह वर्षके बादल और सोलह वर्षके फत्तेमें वह निर्भकता पैदा कर दी, कि देशकी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिये वे अपने प्राणोंकी आहुति दे देनेमें जरा भी न हिचके। इसी भूमिके अन्नमें वह मादकता थी जो खानेवालोंको देशके मदमें मतवाला बना देती थी।

अपनी जन्म-भूमिके नामका भी अनादर न सहनेका अद्वितीय गौरव इसी वीर भूमिको प्राप्त है। उदयपुरके महाराणाने शपथ ली कि यदि भोजन करूँगा तो बूंदी फतह करके करूँगा। मेवाड़से दूरसूथ बूंदीको फतह करना कोई आसान काम न था। सरदारोंने राणाको समझाया कि इसका मतलब तो आत्महत्या करना होगा। सरदारोंकी मन्त्रणानुसार तय हुआ कि नकली बूंदी को फतह कर राणा अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें। राणाकी फौजमें कुछ बूंदीके हाडे राजपूत भी थे। उनसे अपनी मातृभूमिका अपमान न सहा गया और उन्होंने वही कर दिखाया, जो कि राजसूथानके गौरवके योग्य था। मेवाड़के बहुसंख्यक राजपूतोंके बीच, अल्प-संख्यक बूंदीके हाड़े मर मिटे। किसपर? बूंदीके नामपर! धन्य राजसथान, धन्य!!

राजसूथान ही वह भूमि है जिसकी गोदमें भामाशाह उदार

त्यागी खेले है। सचमुच वीर-जननी तू धन्य है ! तेरी गोदके लालोंने संसारमें भारतवर्षका नाम उज्जवल कर दिया। काश्मीर-से लेकर कन्याकुमारीतक सारा भारत तेरे सुपुत्रोंपर फख्र करता है। तेरी ही छातीपर बप्पा रावल जैसे वीर खेले हैं, जिन्होंने सूर्य्यवंशी प्रतापी झंडा न केवल भारतवर्षमें ही प्रत्युत अफगानिसतान, विलोचिसतान और खुरासानतक फहराया। तेरे पुत्र उदारतामें अपनी नजीर आपही थे, जो उनकी शरणमें आया आखीर दमतक रक्षा की। यदि संसारके किसी देशको यह फख्र हो सकता है कि उसके वीर-पुत्रोंने ताज छीनकर बख्श दिये, तो वह महाराणा राजसिंह जैसे तेरे ही सुपुत्रोंकी बदौलत राजसथानको प्राप्त है। तेरे लालोंने धर्म और देशके लिये बार-बार अपना गर्म खून चढ़ाकर हिन्दू-कौमोंकी रगोंमें उत्तेजना पैदा की—मेवाड़के राणा कई पीढ़ियोंतक केवल एक धर्मसथान गयाकी रक्षामें एक दूसरेके बाद प्राणोंकी आहुतियाँ चढ़ाते रहे। सचमुच वीर-जननी माँ ! यदि तू दुर्गादास, राजसिंह, जयपुरके रामसिंह आदि वीरोंका प्रसव न करती तो शायद भारतवर्षमें औरङ्गजेब जैसे बादशाहोंके होते हुए एक भी हिंदू नजर न आता।

ओ राजसथान ! तेरे पुत्र ही नहीं, प्रत्युत पुत्रियाँ भी देश व धर्म रक्षार्थ सदैव तत्पर रही हैं, तेरी पुत्री पद्मिनी, ताराबाई-में वह शक्ति थी कि शत्रुओंके छक्के छुड़ा सकती थीं, तेरी पुत्रियाँ अपने बेटों और पतियोंको प्रसन्नता-पूर्वक रणक्षेत्रमें बलिदानके लिये भेज सकती थीं। फत्तेकी माता कर्णवती भी तेरी ही पुत्री थी, जिसने पुत्रकी जरा-सी कमजोरीको देखकर सवयं पुत्र-वधू सहित रणक्षेत्रमें जा प्राण विसर्जित कर दिये। तेरी पुत्रियोंने सतीत्वरक्षार्थ जो जो उदाहरण संसारके सामने

पेश किये, वे तो समस्त स्त्री जातिके लिये अभिमानकी वस्तु हैं। क्या राजस्थानकी पुत्रियोंसे अधिक उज्ज्वल वीरत्वके उदाहरण सारे संसारके इतिहासका कोई पृष्ठ दे सकता है? तेरी पुत्रियाँ एक बार नहीं, अनेक बार सतीत्व-रक्षार्थ जलते हुए आगके कुंडोंमें हजारोंकी संख्यामें कूद पड़ीं। सचमुच भारतकी वीरताका इतिहास तेरा ही इतिहास है। किंतु जननी! आज तेरी पुत्रियोंके कारनामे केवल इतिहासके पृष्ठोंकी ही रौनक रह गये। तेरी वर्त्तमान दशाको देखकर हृदय विदीर्ण होता है। आज वीरोंकी जगह कायर और बुजदिलोंने ले ली। दुर्गादास जैसे वीर, जिनको धन और राज-पाटका लालच भी अपने कर्त्तव्यसे च्युत न कर सका था, आज दिखाई नहीं पड़ते। उनकी जगह खुशामदी और चापलूस तेरे पुत्रोंकी कीर्तिपर कलङ्क लगानेके लिये पैदा हो गये हैं। दुर्गावती जैसी पवित्र देवियोंका स्थान, जिसने अपना हाथ एक गैर आदमीका स्पर्श होनेके कारण काटकर फेंक दिया था आज खाली सा मालूम देता है। जहां कभी तेरे पुत्र आदरके पात्र थे, आज घृणाके केन्द्र बने हुए हैं। यदि स्वेच्छाचार, चापलूसी, स्वार्थ आदि दुर्गुण तेरे पुत्रोंमें इसी तरह बढ़ते गये तो वह दिन दूर नहीं जब कि उन पूर्वजोंकी कीर्तिपर पानी फिर जायगा। अब केवल आवाहन है उन पुत्रोंका, जिनके दिलमें तेरे लिये कुछ जोश हो और हो उनमें अतुल पराक्रम। तभी तेरी पूर्व-संचित कीर्ति स्थिर रह सकती है; अन्यथा नहीं। भगवन्! तू शीघ्र ही ऐसे पुत्रोंको फिर राजस्थानमें भेज।

अभ्यास

(१) राजस्थान किसे कहते हैं? इसमें कौन-कौनसे वीर अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं।

(२) राणा-प्रतापके बारेमें क्या जानते हो ? ये संसारमें इतने यशस्वी क्यों समझे जाते हैं ?

(३) वीरताकी प्रतिमूर्ति यह राजस्थान ही क्यों कहा जाता है ?

(४) मेवाड़, चित्तौड़ कहां हैं, इनके सम्बन्धमें क्या जानते हो ?

(५) यहाकी वीर स्त्रियोंके सम्बन्धमें अपनी राय दो ।

(६) राजस्थानको वीर-भूमि बनानेमें यहाकी स्त्रियोका कितना हाथ है ?

(७) राजस्थानके छोटे-छोटे बच्चोंमें भी इतना अदम्य उत्साह, प्रतिभा, बल और वीरताका संचार क्यों दिखलाई पड़ता था ?

(८) राजस्थानके वीरोंने अपनी मातृ-भूमिके रक्षार्थ किन-किन मुसलमान बादशाहोंसे लोहा लिया ।

३५—सूरदासके पद

(ले०—महात्मा सूरदास)

(आपका जन्म, अनुमानसे सं० १५४० वि० में हुआ था, आपकी मृत्युका अनुमान सं० १६२० वि० में किया जाता है । आप श्रीकृष्णजीके अनन्य भक्त थे । आपका रचित सूर सागर ब्रज भाषाका एक सर्वोत्कृष्ट और महान् ग्रन्थ है । आपका पवित्र विरद हिन्दी साहित्यमें सदैव अमर रहेगा । सरसभावोंसे प्रवाहित आपकी भाव-धारा श्रीकृष्ण भक्तोंके हृदयको आनन्दसे परिप्लवित करनेवाली है ।)

(१)

हम भक्तनके भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह व्रत टरत न टारे ॥
भक्तै काज लाज हिये धरिकै, पाइ पयादे धाऊं ।
जहँ जहँ भीर परै भक्तन पै, तहँ तहँ जाइ छुड़ाऊँ ॥

जो मम भक्तसों वैर करत है, सो निज वैरी मेरो।
देखि विचारि भक्त हित कारन, हाँकत हौं रथ तेरो॥
जीते जीत भक्त अपनेको, हारे हारि विचारौं।
सूरदास सुनि भक्त विरोधी, चक्र सुदर्सन जारौं॥

(२)

छांड़ि मन हरि विमुखन को संग।
जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजनमें भङ्ग॥
कहा होत पय पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान नहाये गंग॥
खरको कहा अरगजा लेपन, मर्कट भूषन अंग।
गजको कहा नहामे सरिता, बहुरि धरै खहि छङ्ग॥
पाहन पतिक वान नहिं वेधत, रीतो करत निखङ्ग।
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रङ्ग॥

(३)

फिर ब्रज वसहु गोकुलनाथ।
बहुरि न तुमहिं जगाय पठवौं, गोधननके साथ॥
वरजों न माखन खात कबहूं, दैहों देन लुटाय।
कबहूं न दैहौं उरहनो, जसुमतिके आगे जाय॥
दौरि दाम न देहुँगी, लकुटी न जसुमति पानि।
चोरी न देहुँ उघारि, किये औगुन न कहिहौं आनि॥
करिहौं न तुमसों मान हठ, हठिहौं न माँगत दान।
कहिहौं न मृदु मुरली वजावन, करन तुमसों गान॥
कहिहौं न चरनन देन जावक, गुहन वेलना फूल।
कहिहौं न करन सिंगार वटतर, वसन जमुना कूल॥
भुज भूषनन युत कन्ध धरिकै, रास नृत न कराउँ।
हौं संकेत निकुञ्ज वसिकै, दूति मुख न बुलाउँ॥

एक बार जु दरस दिखावहु, प्रीति पन्थ बसाय।
चंवर करौ चढ़ाय आसन, नयन अंग अंग लाय॥
देहु दरसन नन्दनन्दन मिलन ही की आस।
सूर प्रभुकी कुँवर छविको भरत लोचन प्यास॥

(४)

बिनगोपाल बैरिन भइं कुंजै।
तबये लता लगति अति शीतल, अब भइं विषम ज्वालकी पुंजै॥
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलै, अलि गुञ्जै।
पवन पानि घनसार सजीवनि, दधिसुत किरन भानु भइं भुंजै॥
ए, ऊधो कहियो माधव सो, विरह मदन करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभूको मग जोवत, अंखिया भईं बरन ज्यो गुंजैं॥

(५)

ऊधो ब्रजकी दशा विचारौ।
ता पीछे यह सिद्धि आपनी, जोगकथा बिसूतारो॥
जेहि कारन पठये नंदनन्दन सो सोचहु मन माही।
केतिक बीच बिरह, परमारथ जानत हौ किधौ नाहीं॥
तुम निज दास जो सखा श्यामके संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलम्ब फेनको फिरि फिरि कहा गहत हौ॥
वै अति ललित मनोहर आनन कैसे मनहि बिसारौ।
जोग युक्ति औ मुक्ति विविध विधि वा मुरलीपर वारौ॥
जेहि उर बसे श्यामसुन्दर घन, क्यो निर्गुन कहि आवै।
सूरदास सोइ भजन कहावै, जाहि दूसरी भावै॥

अभ्यास

(१) कृष्णजी भक्त-प्रतिपालक हैं। इस पाठसे सिद्ध करो।
(२) नीचोंका स्वभाव नहीं छूटता। दूसरे छन्दसे प्रमाणित करो।

(३) गोपिकाएं कृष्णकी किशोरावस्थाका स्मरण कर, किन-किन बातों को याद करती हैं ? तीसरे छन्दकी सहायतासे बताओ।

(४) 'दधि सुत किरन भानु भइ भुजैं, में भावार्थ बताओ।

(५) शब्दार्थ बताओ :—

भुजङ्ग, अरगजा, छग, स्फुटी, सकेत, निकुंज, दूति।

—०॥०—

३६—कंस प्रवंचना

[ले० लल्लूजी लाल]

(आप गुजराती ब्राह्मण थे। आप सं० १८६० में वर्त्तमान थे। आप कुछ दिनोंतक कलकत्तेके फोर्टविलियम कालेजमें शिक्षक रहे। वहीं आपने ब्रजभाषा-मिश्रित वर्त्तमान बोलचालकी भाषामें श्रीकृष्णचन्द्रका चरित्र लिखा। आपका प्रेम-सागर नामक ग्रन्थ बहुत ही लोकप्रिय है। आप प्राचीन गद्यके जन्मदाता कहे जाते हैं।)

श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज, एक दिन श्रीकृष्ण बलराम सांझ समै धेनु चरायके वनसे घरको आते थे, इसी बीच एक असुर अति बड़ा बैल बन आय गायोंसे मिला।

आकाश लौं देह तिनि धरी। पीठ कड़ी पाथर सी करी॥
बड़े सींग तीछन दोउ खरे। रक्त नैयनन अति ही रिस भरे॥
पूंछ उठाय डकारतु फिरे। रहि रहि मूतत गोबर करै॥
फड़कै कन्ध हिलावै कान। भजे देव सब छोड़ विमान॥
खुरसों खोदै नदी करारे। पर्वत उथल पीठ सो डारे॥
सबको त्रास भयो तिहि काल। कंपहि लोकपाल दिकपाल॥
पृथ्वी हलै शेष थरहरै। तिय औ धेनु गर्भ भू परै॥

उसे देखते ही सब गायें तो जिधर तिधर फैल गईं और ब्रज बासी दौड़ वहां आये, जहाँ सबके पीछे श्रीकृष्ण बलराम चले आते थे। प्रणामकर कहा—महाराज, आगे एक अति बड़ा बैल

खड़ा है, उससे हमें बचाओ। इतनी बातके सुनते ही अन्तर-जामी श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले कि तुम कुछ मत डरो उससे, वह वृषभका रूप बनाकर आया है नीच, हमसे चाहता है अपनी मीच। इतना कह आगे जाय उसे देख बोले बनवारी, कि आव हमारे पास कपट तन धारी, तू और किसूको क्यों डराता है, मेरे निकट किस लिये नहीं आता? जो वैरी सिंहका कहावता है सो मृगपर नहीं धावता। देख, मैं ही हूं कालरूप गोविन्द; मैंने तुझसे बहुतोंको मारकर किया है निकन्द।

यों कह फिर ताल ठोक ललकारे-आ मुझसे संग्राम कर। यह वचन सुनते ही असुर ऐसे क्रोधकर धाया कि मानौ इन्द्रका वज्र आया। जो जो हरि उसे हटाते थे तो तो वह संभल बढ़ा आता था। एक बार जो इन्होंने दे पटका तोंही खिजलाकर- उठा और दोनो सींगोंसे उसने हरिको दबाया, तब तो श्रीकृष्णजीने भी फुरतीसे निकल झटपट पांवपर पांव दे उसके सींग पकड़ यों मरोड़ा कि जैसे कोई भींगे चीरको निचोड़े। निदान वह पछाड़ खाय गिरा और उसका जी निकल गया। तिस समै सब देवता अपने अपने विमानोंमें बैठ आनन्दसे फूल बरसाने लगे औ गोपी गोप कृष्ण जसगाने। इस बीच श्रीराधिकाजीने आ हरिसे कहा कि महाराज वृषभ रूप जो तुमने मारा इसका पाप हुआ इससे अब तुम तीरथ नहाय आओ तब किसीको हाथ लगाओ। इतने बातके सुनते ही प्रभु बोले, सब तीरथोंको मैं ब्रजहीमें बुला लेता हूँ। यों कह गोवर्द्धन निकट जाय, दो औंड़े कुण्ड खुदवाए, तहीं सब तीरथ देह धर आये, औ अपना-अपना नाम कह उसमें जल डाल-डाल चले गये। तब श्रीकृष्ण उनमें स्नानकर, बाहर आय अनेक गौदान दे बहुतसे ब्राह्मण जिमाय शुद्ध हुए, औ उसी दिनसे कृष्ण-कुण्ड, राधा-कुण्ड करके वे प्रसिद्ध हुए।

यह प्रसङ्ग सुनाय श्री शुकदेवमुनि बोले कि महाराज, एक दिन नारदमुनिजी कंसके पास आए, औ उसका कोप बढ़ानेको जब उन्होंने बलराम और श्यामके होने और मायाके आने औ कृष्णके जानेका भेद समझाकर कहा तब कंस क्रोधकर बोला—नारदजी तुम सच कहते हो।

प्रथम दियो सुत आनिके, मन परतीत बढ़ाय।
जो ठग कछू दिखाइके, सर्वसु लै भजिजाय॥

इतना कह वसुदेवको बुलाय पकड़ बांधा और खांडेपर हाथ रख अकुलाकर बोला—

मिल रहा कपटी तू मुझे। भला साधु जाना मैं तुझे॥
दिया नन्दके कृष्ण पठाय। देवी इसे दिखाई आय॥
मनमें कछु कही मुख और। आज अवश्य मारूं इहि ठौर॥
मित्र सखा सेवक हितकारी। करै कपट सो पापी भारी॥

मुख मीठा, मन विष भरा, रहे कपटके हेत।
आप काज पर द्रोहिया, उससे भला जु प्रेत॥

ऐसे बक झक फिर कंस नारदजीसे कहने लगा, कि महाराज, हमने कुछ इसके मनका भेद न पाया, हुआ लड़का औ कन्याको ला दिखाया जिसे कहा अधूरा गया सोई जाय गोकुल में बलदेव भया। इतना कह क्रोधकर खड्ग उठाय, ओठ चबाय, जों चाहा कि वसुदेवको मारूं तो नारद मुनिने हाथ पकड़कर कहा—राजा वसुदेवको तो तू रख आज, औ जिसमें श्रीकृष्ण बलदेव आवें सो कर काज। ऐसे समझाय बुझाय जब नारद मुनि चले गये, तब कंसने वसुदेव देवकीको एक कोठरीमें मूंद दिया और आप भयातुर हो केसी नाम राक्षसको बुलाके बोला—

महाबली तू साथी मेरा। बड़ा भरोसा मुझको तेरा॥
एक बार तू ब्रजमे जा। राम कृष्ण हनि मुझे दिखा॥

इतना वचन सुनते ही केसी तो आज्ञा पा बिदा हो दण्डवत् कर वृन्दावनको गया औ कंसने साल, तुसाल, चानूर, अरिष्ट, व्योमासुर आदि जितने मन्त्री थे सबको बुला भेजा। वे आए, तिन्हे समझाकर कहने लगा कि मेरा वैरी पास आय बसा है, तुम अपने जीमें सोच विचार करके मेरे मनका सूल जो खटकता है निकालो। मंत्री बोले—पृथ्वीनाथ, आप महाबली हो किससे डरते है। रामकृष्णका मारना क्या बड़ी बात है, कुछ चिन्ता मत करो, जिस छलबलसे वे यहाँ आवें, सोई हम मता बतावें।

पहले तो यहाँ भली भांतिसे एक ऐसी सुन्दर रङ्गभूमि बनवावें कि जिसकी शोभा सुनते ही देखनेको नगर-नगर गाँव-गाँवके लोग उठ धावे। पीछे महादेवका यज्ञ करवाओ, औ होमके लिये बकरे भैंसे मंगवाओ। यह समाचार सुन सब ब्रजवासी भेंट लावेंगे, तिनके साथ राम कृष्ण भी आवेगे। उन्हे तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा कै कोई और ही बली पौर पै मार डालेगा। इतनी बातके सुनते ही—

कहै कंस मन लाय, भलौ मता मन्त्री कियौ॥
लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दए॥

फिर सभा कर अपने बड़े बड़े राक्षसोसे कहने लगा कि जब भानजे राम कृष्ण यहाँ आवें तब तुममेसे कोई उन्हे मार डालियो, जो मेरे जीका खटका जाय। तिन्हे यो समझाय पुनि महावतको बुलाके बोला कि तेरे वशमें मतवाला हाथी है, तू द्वारपर लिये खड़ा रहियो। जब वे दोनो आवे औ द्वारमे पाँव दें, तब तू हाथीसे चिरवा डालियो, किसी भाँति भागने न पावै, जो तिन दोनोको मारेगा, सो मुंह मांगा धन पावेगा।

ऐसे सबको सुनाय समुझाय बुझाय कार्तिक वदी चौदसको शिवका जज्ञ ठहराय, कसने साँझ समै अक्रूरको बुलाय अति आवभगति कर, घर भीतर ले जाय, एक सिंहासनपर अपने पास बैठाय, हाथ पकड़ अति प्यारसे कहा कि तुम यदुकुलमें सबसे बड़े ज्ञानी, धरमात्मा, धीर हो, इसलिये तुम्हे सब जानते हैं। ऐसा कोई नहीं जो तुम्हे देखा सुना न होय, इससे जैसे इन्द्रका काज बावनने जा किया जो छलकर बलिका सारा राज ले लिया और राजा बलिको पाताल पठाया, तैसे तुम हमारा काम करो तो एक वेर वृन्दावन जाओ और देवकीके दोनो लड़कोको जो बने तो छलबलकर यहाँ ले आओ।

कहा है जो बड़े है सो आप दुख सहा करते है पराया काज, तिसमे तुम्हे तो है हमारी सब बातकी लाज। अधिक क्या कहेंगे, जैसे बने वैसे उन्हे ले आओ, तो यहाँ सहज ही मे मारे जायँगे। कै तो देखते चानूर पछाड़ेगा, कै गज कुवलिया पकड चीर डालेगा, नहीं तो मैं ही उठ मारूंगा, अपना काज अपने हाथ सवारूंगा। औ उन दोनोको मार पीछे उग्रसेनको हनूंगा, क्योंकि वह बड़ा कपटी है, मेरा मरना चाहता है। फिर देवकीके पिता देवकको आगसे जलाय पानीमे डुबोऊगा। साथ ही उसके वसुदेवको मार हरिभक्तोको जड़से खोददूंगा, तब निष्कंटक राजकर जरासिंधु जो मेरा मित्र है प्रचण्ड, उसके त्राससे काँपते हैं नौ खण्ड और नरकासुर, बानासुर आदि बड़े-बड़े महाबली राक्षस उसके सेवक हैं, तिससे जा मिलूंगा, जो तुम राम कृष्णको ले आओ।

इतनी बातें कहकर कस फिर अक्रूरको समझाने लगा कि तुम वृन्दावनमे जाय नन्दके यहाँ कहियो कि शिवका यज्ञ है, धनुष धरा है औ अनेक प्रकारके कुतूहल वहाँ होयंगे। यह

सुन नन्द उपनन्द गोपों समेत बकरे भैंसे ले भेंट देने लावेंगे, तिनके साथ देखनेको कृष्ण बलदेव भी आवेंगे। यह तो मैंने तुम्हे उनके लावनेको उपाय बता दिया, आगे तुम सज्ञान हो, जो और उकत बनि आवे सो करि कहियो, अधिक तुमसे क्या कहैं। कहा है—

होय विचित्र बसीठ, जाहि बुद्धि बल आपनो।
पर कारज पर ढीठ, करहिं भरोसो ता तनौ॥

इतनी बातके सुनते ही पहले तो अक्रूरने अपने जीमें विचारा, कि जो मै इसे कुछ भली बात कहूंगा तो यह न मानेगा इससे उत्तम यही कि इस समै इसके मनभाती सुहाती बात कहूँ। ऐसे और भी ठौर कहा है कि वही कहिये जो जिसे सुहाय। यों सोच-विचार अक्रूर हाथ जोड़ सिर झुकाय बोला— महाराज, तुमने भला मना किया, यह बचन हमने भी सिर चढ़ाय मान लिया, होनहारपर कुछ बस नहीं चलता। मनुष्य अनेक मनोरथ कर धावता है, पर करमका लिखाही फल पावता है। आगम बाध तुमने यह बात विचारी है, न जानिये कैसी होय मैंने तुम्हारी बात मान ली, कल भोरको जाऊँगा और बलराम कृष्णको ले आऊँगा। ऐसे कह कंससे विदा हो अक्रूर अपने घर आया।

अभ्यास

(१) प्राचीन गद्य साहित्यका जन्मदाता कौन है ?

(२) 'कृष्णकुण्ड और राधाकुण्ड' के विषयमें तुम क्या जानते हो ?

(३) 'नारद और कंस' के बीच जो बातचीत हुई, उसका वर्णन करो ?

(४) इस पाठके अंतर्गत बलिकी कथाके विषयमें तुम क्या जानते हो ?

(५) शब्दार्थ बताओ—

बसीठ, मल्ल, प्रचण्ड, आगम, मूल, मीच ।

(६) अशुद्धियोंको शुद्ध करो—

ब्राह्मन, सर्वज्ञ, जिन्हें, पावता है, उकत ।

(७) मुहाविरोंका अपनी भाषामें प्रयोग करो—

अपना काज अपने हाथ सवारना, बीरा देना ।

(८) इस पाठकी भाषा क्या आधुनिक हिन्दी-भाषासे भिन्न है ? कैसे ?

(९) शुद्ध खड़ी भाषा और वर्त्तमान पाठकी भाषामें क्या अन्तर है ?

—०—०—

३७—रहीमके दोहे

[ले०—कविवर रहीम]

(इतिहास-प्रसिद्ध बैरम खाके पुत्र अब्दुर्रहीम खा खानखानाका जन्म स० १६६१ मे हुआ था अकबरी दरबारके नवरत्नोंमें इनकी भी गणना है । रहीम एक प्रतिभाशाली कवि और अरबी, फारसी, सस्कृत तथा हिन्दीके अच्छे विद्वान थे । इनकी रचनासे ज्ञात होता है कि राम और कृष्णपर इनकी पूरी श्रद्धा थी । यह कवियों और गुणियोंके कल्प-वृक्ष थे । कवि गङ्गको एक ही छन्दके लिये ३६ लाख रुपये दे डाले थे । इनका देहावसान स० १६८२ मे हुआ ।)

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान ।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति संचहि सुजान ॥१॥
दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि ।
सोच नहीं वित हानिको, जो न होय हितहानि ॥ २ ॥

कहि रहीम सम्पति सगे, बनत बहुत बहुरीत ।
विपति कसौटी जे कसे, तेई सांचे मीत ॥ ३ ॥
धनि रहीम गति मीनकी, जल बिछुरत जिय जाय ।
जियत कंज तजि अंत बसि, कहा भौरको भाय ॥ ४ ॥
अमर वेलि बिन मूलकी, प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिये काहि ॥ ५ ॥
जे रहीम विधि बड़ किये, को कहि दूपण काढ़ि ।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तैं बाढ़ ॥ ६ ॥
सर सूखे पंछी उड़ैं, औरे सरन समाहिं ।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहं जाहि ॥ ७ ॥
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावण साथ ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होति आपने हाथ ॥ ८ ॥
खीराको मुंह काटिके, मलियत लोन लगाय ।
रहिमन करुये मुखन की, चहिये यही सजाय ॥ ९ ॥
आप न काहू काम के, डार पात फल फूल ।
औरनको रोकत फिरै, रहिमन पेड़ बबूल ॥ १० ॥
यो रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत ।
ज्यों बड़री अंखिया निरखि, आंखिनको सुख होत ॥ ११ ॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भौ धीम ।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम ॥ १२ ॥
जो पुरुषारथ ते कहुं, सम्पति मिलति रहीम ।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥ १३ ॥
अनुचित उचित रहीम लघु, कराहि बड़नके जोर ।
ज्यो शशि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर ॥ १४ ॥
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि ।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहि सब ताहि ॥ १५ ॥

मुकता करै कपूर करि, चातक जीवन जोय।
ये तो बड़ो रहीम जल, व्याल बदन विप होय ॥१६॥
होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बाढ़ेहु सो बिन काज ही, जैसे तार खजूर ॥१७॥
रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुस चून ॥१८॥
बढ़त रहीम धनाड्य धन, धनै धनी को जाइ।
घटै बढ़ै तिनको कहा, भीख माँगि जो जाइ ॥१६॥
रहिमन विपदा तू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगतमे, जानि परत सब कोय ॥२०॥
साधु सराहै साधुता, जती जोखिता जान।
रहिमन साँचे सूर को, वैरी करै बखान ॥२१॥

अभ्यास

(१) प्रतिपालत, परकाज, बिछुरत, सरन, अनरीतैं, रीतैं आदि शब्दोंका अर्थ बतलाओ।

(२) 'यो रहीम ··सुख होत, में पद्यका भावार्थ लिखो।

(३) आप न काहू कामके ...पेड़ बबूल। इस पदका अन्वय करो।

(४) अन्वय करो :—

जाय समानी··· गये रहीम।

(५) मुख्य अर्थको बताओ :—

चन्द्र दूबरो . ...नखत तैं बाढ़ि।

—००—

३८—चित्तौड़-चर्चा

[संकलित]

भारतवर्षके इतिहासमें राजपूतानेका जो उच्च सूथान है, उससे संसार-मात्रके इतिहास-प्रेमी परिचित हैं और इस देशका तो बच्चा-बच्चातक उसे जानता है। हिन्दू-जातिके पतन-कालमें राजपूतोंने उसकी गौरवकी रक्षाके लिये जो असीम वीरता और त्याग दिखाया, उससे भारतवासी कभी विसमृत न हो सकेंगे। राजपूतानेका यह गौरव प्रधानतः मेवाड़ने रखा है, जिसकी राजधानी लगातार ८०० वर्षतक चित्तौड़गढ़ रहा है।

चित्तौड़गढ़ अरावली पर्वतके एक शिखरपर बना हुआ है और कदाचित् भारतवर्षका सबसे बड़ा किला है। इसकी लंबाई लगभग पाँच मील और चौड़ाई दो मील है। राजपूतानेके अन्य राज्योंके समान मेवाड़की भूमि-मरुभूमि नहीं है। राजपूतानेमें तो मेवाड़ ही हरा-भरा प्रदेश माना जाता है। आरावलीकी श्रेणियोंके कारण चित्तौड़गढ़के चारो ओर तो प्राकृतिक दृश्य और भी सुन्दर हो गया है। पर्वत-पुञ्जोके कारण जलकी अधिकता, जलके कारण जलाशयोकी अधिकता और जलाशयोके कारण वृक्षावली तथा कृषिकी अधिकतासे चारो ओर हरीतिमाका ही राज्य दिखलाई पड़ता है। वर्षा-ऋतुमे तो फिर कहना ही क्या है।

बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे और उदयपुर चित्तौड़गढ़ रेलवेके चित्तौड़गढ़ नामक जंक्शनसे किलेतक पक्की सड़क गई है। सूटेशनके निकट ही यात्रियोके ठहरनेके लिये राज्यकी ओरसे एक धर्मशाला बनवा दी गई है और एक छोटीसी बसती भी बस गई है। एक सूटेशन पहलेसे ही किला दिखाई देने लगता है और जबतक गाड़ी चित्तौड़गढ़के आगेके सूटेशनपर नहीं पहुँच जाती, तबतक बराबर दिखाई देता रहता है।

स्टेशनसे चित्तौड़गढ़ लगभग तीन मील पड़ता है। किलेको जानेके लिये दो घोड़ोंका तांगा तथा बैलगाड़ी मिलती है। किलेतक पहुँचनेमे घोड़े-तांगेको एक और बैलगाड़ीको दो घण्टे लगते है। जाने-आनेका किराया ताँगेका ४। और बैलगाड़ीका २ राजद्वारा नियुक्त कर दिया गया है।

समभूमिपर लगभग मीलभर चल चुकनेके पश्चात् एक छोटीसी नदी मिलती है। नदीके पार होते ही चढ़ाई आरम्भ होती है। एक मीलके लगभग चढ़नेपर किलेकी चहारदीवारी आरम्भ होती है। प्राचीर दृढ़ और सुन्दर है। उसके ऊपर अंगूरेवन्दी है और स्थान-स्थानपर सुन्दर वुर्ज वने हुए हैं। प्राचीरकी मरम्मतपर पूर्ण ध्यान दिया जाता है और अवतक वह अच्छी अवस्थामें है। गढमे प्रवेश करनेके लिये सवसे पहले 'रामपोल' नामक फाटक मिलता है। यहाँ फाटकको 'पोल' कहते हैं। 'रामपोलसे' ही सड़क घुमावदार हो गई है। गढ़के ऊपर सम-भूमिपर पहुँचनेके लिये तीन घेरे और 'लक्ष्मण-पोल,' 'गणेश-पोल,' 'हनुमान-पोल, 'नई-पोल' और 'पांडर-पोल' नामक छः फाटक और पार करने पड़ते हैं।

एक पोलसे दूसरे पोलकी ओर जाते हुए मार्गमे अनेक छोटे-छोटे मन्दिर और समाधियाँ मिलती हैं। अधिकाश समाधियाँ उन वीरोंकी हैं, जिन्होंने चित्तौड़गढ़की रक्षामे विशेष आत्मत्याग किया था। जिस स्थानपर जो वीर मारा गया है या जहाँपर जो धराशायी हुआ है, उसकी समाधि उसी स्थानपर वना दी गई है। इन्हीं समाधियोमे जयमलकी भी समाधि है। अकवरकी गोलीका निशाना होकर जिस स्थानपर इस वीरका शरीर गिरा था, उसी स्थानपर यह समाधि वनी हुई है। इसपर दृष्टि पड़ते ही शरीरमे रोमाञ्च हो उठता है और

जयमलके युद्ध और उसकी वीरगतिका समस्त दृश्य, विना देखे हुए भी, नेत्रोंके सम्मुख चित्रित सा हो जाता है। इन समाधियोंमें कोई कला-कौशल नहीं, तथापि देरतक देखते रहनेपर भी तृप्ति नहीं होती है।

कोटमें प्रवेश करते ही चित्तौड़गढ़की कचहरी मिलती है, जहाँ किलेको देखनेके लिए राज्यका आज्ञा-पत्र मिलता है, किला दिखानेके लिए प्रदर्शक भी मिल सकता है। प्रदर्शकके कार्य-करनेवाले लोगोंको राजद्वारावेतन आदि नहीं मिलता और न ये लोग दूसरा कोई व्यापार ही करते हैं। दर्शकोंको किला दिखानेमें जो कुछ उन्हें प्राप्त होता है, उसीसे उनका निर्वाह हो जाता है।

किलेके भीतर भी वस्ती है। इस समय इसकी जनसंख्या सात सहस्रके लगभग है। हिन्दू और मुसलमान दोनों यहाँ पाये जाते हैं। हिन्दुओंमें चारों वर्णके लोग मिलेंगे। किलेके इन निवासियोंकी जीविका कृषि है। इनमें अधिकांश गरीबीकी हालतमें दिखाई पड़ते हैं।

गढ़-निवासियोंके छोटे छोटे मकानोंको छोड़कर राज्यकी कचहरी, तोपखाना आदि दो-चार बड़ी-बड़ी इमारतें भी हैं जो नई बनी हुई जान पड़ती हैं। इनके अतिरिक्त एक बहुत बड़ा राजमहल और बन रहा है। अबतक इसका कार्य पूरा नहीं हुआ। किलेकी पुरानी इमारतोंमें कालीजी और मीराबाईके मन्दिर, विजयस्तम्भ और पद्मिनीके महलको छोड़कर शेष इमारतें प्रायः नष्टभ्रष्ट हो गई हैं। उपर्युक्त दोनों मन्दिरों और विजयस्तम्भकी शिल्पकला देखने योग्य है। कालीजीके मन्दिरको देखकर उस समयका स्मरण हो आता है जब राजपूत वीर युद्धके पूर्व मन्दिरमें एकत्रित हो विजयका वर मांग उत्साहसे रण-वाद्य बजाते हुए समरभूमिमें जाते थे और विजयके उपरान्त धूमधामसे जीव-बलि सहित कालीजीकी पूजा करते थे।

मन्दिरमे कालीकी प्राचीन श्याममूर्तिके साथ ही-साथ और दो नवीन मूर्तियाँ प्रतिष्ठित है। मीराबाईके मन्दिरकी मरम्मतपर पूरा ध्यान रखा गया है। इस मन्दिरमे राधाकृष्णकी युगल मूर्तियाँ सुथापित है। इन्हे देख मीराबाईकी प्रगाढ़ भक्तिका सुमरण हो आता है और भक्त यात्रीसे मीराबाईका यह भजन गुन-गुनाये बिना नहीं रहा जाता—"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।"

विजयसुतम्भ महाराणा कुम्भका बनवाया हुआ है, जो सन् १४१९ ई० मे मेवाड़ के सिहासनपर बैठे थे। खिलजी-वंशके अन्तिम दिनोंमे दिल्लीश्वरके कमज़ोर हो जानेपर अन्य सूबोंके साथ मालवा और गुजरात भी स्वतन्त्र हो गए थे। मेवाड़को समृद्ध देख, इन दोनो सूबेदारोंने मिलकर सन् १४४० ई० मे उसपर आक्रमण किया; किन्तु राणा कुम्भ द्वारा वे बुरी तरह परासुत हुए। मालवाके नवाब मुहम्मद खिलजीको तो महाराजकी सेनाने कैद भी कर लिया, किंतु उदारताके कारण उन्होंने उसे बिना कोई दण्ड दिये ही छोड़ दिया। इस विजयके दस वर्ष पश्चात् उसके सुमारक रूप महाराणाने यह विजय सुतम्भ बनवाया। यह विशाल सुतम्भ नौ खण्डोंका है। चढ़नेके लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपरसे पूरे किले और उसके चारों ओरका कई मीलका दृश्य दिखलाई पड़ता है। इसके अंतरङ्ग और बहिरंग दोनो भाग मूर्तियोंसे भरे पड़े हैं। इसके बननेमें दस वर्ष लगे थे। उपर्युक्त युद्धका समसुत वृत्तान्त सुतम्भपर खुदा हुआ है। मेवाड़को केवल इस विजयका ही सुमारक नहीं, हिंदू-जातिके अतिम गौरवका सुमारक कहना ही उचित होगा।

पद्मिनीका महल एक जलाशयके तटपर होनेके कारण अवश्यही सुन्दर जान पड़ता है, किन्तु उसमे और कोई विशेषता नहीं

है। बनावटसे यह बहुत प्राचीन भी नहीं जान पड़ता। आजकल जब कभी महाराणा या राजकुमार चित्तौड़गढ़ आते हैं तब इसी महलमें ठहरते हैं। इसी कारण इसकी मरम्मतपर विशेष ध्यान दिया जाता है।

इन इमारतोंके सिवा, प्राचीन इमारतोंमें जैनस्तम्भ, महाराणा कुम्भका महल, शृङ्गारचौरी तथा और भी कुछ टूटी-फूटी इमारतें हैं। जैनस्तम्भ जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें है। महाराणा कुम्भके महलका अधिकांश भाग टूट गया है। इसकी मरम्मत आरम्भ की गयी थी, किन्तु इसका सुधरना सम्भव न जान यह विचार त्याग दिया गया। इस महलको देखकर जान पड़ता है कि उस समय मेवाड़की शिल्प कला चरम सीमाको पहुँच चुकी थी। जहां कहीं मरम्मत की गयी है, उस स्थानके काम और पुराने काममें स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है और मालूम होता है, कि प्राचीन शिल्प कला वर्त्तमानकी अपेक्षा कितनी बढ़ी हुई थी। इसी महलमें 'जौहर' का स्थान है, जहाँ मुसलमानोंके स्पर्शकी अपेक्षा मृत्युको श्रेष्ठ माना जाता था और अनेक बार वीर राजपूत ललनाओंने अग्निमें प्रवेश किया था। संसारके इतिहासमें आत्म प्रतिष्ठाके लिए इस प्रकार अलौकिक बलिदान भारतको छोड़कर और कहीं नहीं पाया जाता। ऐसा कौन भारतीय होगा जिसका हृदय इस स्थानके दर्शनसे भर न आता हो? शृंगारचौरी विवाह-स्थल है। यह भी जीर्ण-शीर्ण है। फिर भी इसकी शिल्पकारी दर्शनीय है।

किलेमें चौरासी जलाशय हैं, जिनमें गोमुख, हाथीकुण्ड, फतहकुण्ड, सूरजकुण्ड, आदि प्रसिद्ध हैं। गोमुखका दृश्य दर्शनीय है। एक पहाड़ी झरनेका जल गोमुख द्वारा गिरकर एक स्थानपर एकत्र हो जानेसे एक बड़ा कुण्ड बन गया है। घाट पक्का

बना हुआ है। जहाँसे पानी गिरता है, वहां कई शिव-लिङ्ग बने हुए हैं। चारों ओर पहाड़ियोंके आ जानेसे यह सुथान अत्यन्त रमणीय हो गया है।

अभ्यास

(१) चित्तौड़गढ़, महाराणा प्रताप और पद्मिनीके विषयमें क्या जानते हो ?

(२) जौहर किसे कहते हैं ? उसमें क्या होता था ?

(३) शिखर, कदाचित, पोल, समाधि, दर्शक, प्रतिष्ठित, सूवा, उपर्युक्त और अलौकिकका अर्थ तथा शब्दभेद बतलाओ।

(४) चित्तौड़गढ़की इमारतोंको देखकर यात्रीके हृदयमें क्या भाव आते हैं ?

(५) विजयस्तम्भके विषयमें क्या जानते हो ? यह किसकी विजयका परिसूचक है ?

(६) चित्तौड़गढ भारतीय गौरवका ज्वलन्त उदाहरण है, इस पाठ द्वारा प्रकाशित करो।

(७) सन्धि-विच्छेद करोः—
जलाशय, रोमाञ्च, वृक्षावली।

३६—भूषण कविके पद्य

[ले०—महाकवि भूषण]

[जन्म सं० १६७० के लगभग और मरण सं० १७७२। आप शिवाजीके दरबारी कवि थे। आपकी कवितामें वीर-रस प्रधान है, जिन्हें पढ़नेसे मुर्दा दिलोंमें भी जान आ जाती है। श्लेष और यमक इनकी कविताके प्रधान गुण हैं। समय-समयपर शिवाजीको उत्साहित करनेमें इनकी कविताओंने बड़ा काम किया है। आपकी गणना हिन्दीके नवरत्नोंमें है।

आप जातीय कवि थे, आपने हिन्दू जातिकी रक्षाके निमित्त सतत चेष्टा की है।]

इन्द्र निज हेरत फिरत गजेन्द्र अरु,
इन्द्रको अनुज हेरैं दुगध नदीस को।
भूषन भनत सुर सरिताको हंस हेरैं,
विधि हेरैं हंसको चकोर रजनीस को॥
साहि तनै सिवराज करनी करी है तैं जु,
होत है अचम्भो देव कोटियो तैंतीसको।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने सब,
गिरिको गिरीस हेरैं गिरिजा गिरीसको॥

[२]

बाने फहराने घहराने घण्टा गजनके,
नाहीं ठहराने राव-राने देस-देसके।
नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि,
बाजत निसाने सिवराज जू नरेश के॥
हाथिनके हौदा लौं कसाने कुम्भ कुजरके,
भौनको भजाने अलि छूटे लटि केस के।
दलके दरारे हूं ते कमठ करारे फूटे,
केरा केसे पात बिहराने फन सेस के॥

[३]

प्रेरित पिसाचिनी, निसाचर निसाचरीन,
मिल-मिल आपुसमें गावत बधाई हैं।
भैरो भूत प्रेत भूरि भूधर भयङ्कर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है॥
किलकि-किलकिके कुतूहल करति काली,
डिमि डिमि डमरू दिगम्बर बजाई है।

सिवा पूछे सिव सों, समाज आज कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेन्द्र भृकुटी चढ़ाई है ॥

[४]

ऊँचे घोर मन्दरके अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दरके अन्दर रहाती हैं।
कन्द मूल भोग करें, कन्द मूल भोग करें,
तीन बेर खाती थीं तो तीन बेर खाती हैं ॥
भूखन शिथिल अंग भूखन शिथिल अंग,
बिजन डुलातीं तेई बिजन डुलाती हैं।
भूषण भनत शिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ाती हैं ॥

[५]

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग नाचे उग्ग पर रुण्ड-मुण्ड फरके।
भूषन भनत बाजे जीतिके नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहलको सरके ॥
मारे सुनि सुभट पनारेवारे उद्भट,
तारे लगे फिरन सितारे गढ़ धरके।
बीजापुर बीरनके गोलकुण्डा धीरन के,
दिल्ली उर मीरनके दाड़िमसे दरके ॥

अभ्यास

(१) पहले छन्दका भावार्थ बताओ ?
(२) 'काहू पै सिवा नरेन्द्र भृकुटी चढ़ाई है' यह सुनकर भूत, प्रेत, पिशाच आदि क्यों प्रसन्न होते हैं ?
(३) चौथे छन्दका श्लेषालङ्कार समझाओ। इस छन्दकी विशेषता बतलाओ।

(४) भूषण कविकी कविताओंके विषयमें तुम क्या जानते हो ?

(५) शब्दार्थ बताओः—

दुगध-नदीस, रजनीस, निसाने, जमात, मन्दर ।

(६) अशुद्धका शुद्ध रूप बताओः—

गिरीस, सेस, सिवाजी, निसाचर, जुत्थ, जस ।

(७) अन्वय करोः—

हाथिनके हौदा.........सेसके ।

—०*०—

४०—प्रताप प्रतिज्ञा

(ले०—श्री सुदर्शन)

(आप स्यालकोटके रहनेवाले हैं । आप कहानियों और नाटकोंके सिद्ध-हस्त लेखक हैं । आपकी कहानिया सरल, स्वाभाविक और मनोरंजक होती हैं । उनमें स्त्री और वालक मनोवृत्तिका अच्छा अध्ययन मिलता है । नीचेका नाट्यांश आपकी ही लेखनीका चमत्कार है ।)

स्थान—कोमलमेरका गढ़

समय-प्रभात

[दरबार लगा हुआ है । पवित्र अग्नि जल रही है, और पुरोहित हवन कर रहा है । हवन-कुण्डके समीप आसनपर जगमलसिंह बैठा है । हवनकी समाप्तिपर सब दरबारी खड़े हो जाते हैं ।]

पुरोहित—जगमलसिंह, पवित्र अग्निकी ओर देखो ।

जगमलसिंह—देख रहा हूँ, महाराज ।

पुरोहित—अपनी तलवारको हाथ लगाओ ।

जगमलसिंह—(तलवारको छूता है ।)

पुरोहित—कहो, मैं सच्चे राजपूतोंकी वीर-सभामें प्रतिज्ञा करता हूं ।

जगमलसिंह—मैं सच्चे राजपूतोंकी वीर-सभामें प्रतिज्ञा करता हूं।

पुरोहित—कि जबतक मेवाड़-देशपर शासन करूंगा।

जगमलसिंह—कि जबतक मेवाड़-देशपर शासन करूंगा।

पुरोहित—ब्राह्मण, गऊ-माता और शरणागतकी रक्षा करूंगा।

जगमलसिंह—ब्राह्मण, गौ-माता और शरणागतकी रक्षा करूंगा।

पुरोहित—देश-हितका सदा ध्यान रखूंगा।

जगमलसिंह—देश-हितका सदा ध्यान रखूंगा।

पुरोहित—मेवाड़के दुश्मनोंके सामने सिर न झुकाऊंगा।

जगमलसिंह—मेवाड़के दुश्मनोंके सामने सिर न झुकाऊंगा।

पुरोहित—पूर्वजोंका गौरव जिन्दा रखूंगा।

जगमलसिंह—पूर्वजोंका गौरव जिन्दा रखूंगा।

पुरोहित—झूठ न बोलूंगा।

जगमलसिंह—झूठ न बोलूंगा।

पुरोहित—अन्याय न करूंगा।

जगमलसिंह—अन्याय न करूंगा।

पुरोहित—अपने सुख और लाभके लिये देशको हानि न पहुँचाऊंगा।

जगमलसिंह—अपने सुख और लाभके लिये देशको हानि न पहुँचाऊंगा।

पुरोहित—अगर अपने इन वचनोंको पूरा न करो, तो परमात्मा करे, यह तलवार तुम्हारे ही शरीरकी बोटी-बोटी उड़ा दे, इस अग्निकी ज्वाला तुम्हें जलाकर भस्म कर दे, और इस दरबारमेंसे कोई सूरमा तुम्हारी सहायताको आगे न बढ़े। भील सरदार आ गया।

भील—मै उपस्थित हूं।

पुरोहित—आइये। इनको तिलक कीजिये।

(भील-सरदार आगे बढता है। दरबारी बाजा-बजना आरम्भ हो जाता है। एकाएक राजमाता और प्रतापका प्रवेश)

राजमाता—ठहर जाओ। भील-सरदार, शेरकी चीज गीदड़को देनेकी भूल मत करो।

पुरोहित—राजमाता !......

राजमाता—महाराज ! मै आपका अभिप्राय पूर्ण रूपसे समझती हूं। आप यही कहेंगे कि महाराना यह निश्चय कर गये हैं कि उनके बाद जगमलसिंह राज-सिंहासन पर बैठाया जाय।

पुरोहित—हाँ ! और ये सब इस बातके साक्षी हैं।

राजमाता—परन्तु यह अनुचित है।

पुरोहित—(आश्चर्य से) अनुचित !

राजमाता—जगमलसिंहके निर्बल कन्धे इस उत्तर दायित्वका भार नहीं उठा सकते। अगर इस समय मेवाड़को वीर राजा न मिला तो इसके बचनेकी कोई आशा नहीं।

पुरोहित—मगर यह महारानीकी आज्ञा थी, उनकी अंतिम इच्छा थी।

राजमाता—देशके सामने महारानी भी कोई चीज नहीं।

पुरोहित—राजमाता !

राजमाता—महाराज ! आप क्या कह रहे है ? जरा सोचिये। मेवाड़ क्या था, और आज किस अधोगतिको प्राप्त हो चुका है। इसके हरे-भरे खेत उजड़ गये हैं, इसके सुन्दर भवन टूटे हुए खंड़हर बन गये हैं और इसका प्राचीन गौरव भूले-बिसरे हुए समयकी कहानी बन

चुका है। मुगल-बादशाह इसकी तरफ लोभकी आँखोंसे टकटकी लगाये देख रहा है। नहीं, नहीं, यह लड़का कुछ नहीं कर सकेगा। देशको इस समय किसी बहादुर बेटेकी आवश्यकता है।

जगमलसिंह—और वह बहादुर बेटा कौन है?

राजमाता—उसे मेवाड़का बच्चा-बच्चा जानता है।

जगमलसिंह—मगर उसका नाम?

राजमाता—(धीरेसे) प्रताप।

प्रताप—नहीं, मै इस योग्य नहीं हूँ।

जगमलसिंह—वह कहता है, मै इस योग्य नहीं हूँ।

राजमाता—मगर सारे मेवाड़मे यही है, जो मेवाड़को बचा सकता है।

जगमलसिंह—क्योंकि आपका बेटा है।

राजमाता—नहीं, क्योंकि वह सूरमा है। जरा मेरी दशाका ख्याल कर, मैं इस समय मौतके किनारेसे बोल रही हू और मुझे इस बातकी कोई परवाह नहीं कि मेरे बाद मेरा लड़का राजसिंहासनपर बैठता या दूसरा आदमी। मगर एक बातकी मुझे चिन्ता है और मरनेके बाद भी रहेगी, कि इस राजसिंहासनपर कोई ऐसा आदमी न बैठ जाय, जिसकी भुजाओंमें शक्ति, हृदयमें साहस, सिरमें बुद्धि, और लहूकी एक-एक बूंदमें देशभक्तिको पागल बना देनेवाली धुन न हो। अगर ये अनमोल गुण प्रतापमे न होते तो चाहे देशका एक एक बच्चा उसे तख्त और ताजका अधिकारी स्वीकार कर लेता, परन्तु मैं उस मौतका स्मरण करके जो मेरी प्रतीक्षा कर रही है और उन चरणोंकी सौगन्द खाकर जिनके

साथ मैं अभी सती हो जानेवाली हूं, सच कहती हूं कि सबसे पहले मैं आगे बढ़ती और उसे यह कहकर तख्तसे उतार देती कि सावधान, इस सिंहासनपर पाँव न धरना, नहीं तो माँका शाप तुझे नष्ट कर देगा।

जगमलसिंह—ऊँह ! ये सब कहनेकी बातें हैं।

राजमाता—कमीने लड़के ! तुझे अपनी माँका अपमान करते लज्जा नहीं आती ? प्रताप, तू सुन रहा है, जगमल मेरा अपमान कर रहा है।

एक सरदार—राजमाताका अपमान असह्य है। जगमलसिंह माफी माँगो।

जगमलसिंह—जगमलकी जबान माफी मांगना नहीं जानती।

दूसरा सरदार—तो इसका परिणाम अच्छा न होगा। हम कलकी महारानी और आजकी राजमाताकी शानसे कहा गया एक भी कटु-वचन नहीं सुन सकते।

जगमलसिंह—मगर मैं महाराना हूं।

तीसरा सरदार—तुम महाराना नहीं हो। जिसकी जीभ अपने वशमें नहीं, जो मान और अपमानकी नीति रीति नहीं जानता, वह देशकी नौकाको भँवरसे क्या बचा सकेगा ? यह केवल भ्रम है।

राजमाता—प्रताप, आगे बढ़कर उसे आसनसे उठा दो, असभ्यका स्थान दरबारके अन्दर नहीं, दरबारके बाहर है।

प्रताप—माता, मुझे विवश न करो। मैं राज्य नहीं चाहता।

राजमाता—मगर राज्य तुझे चाहता है।

प्रताप—(कुछ सोचकर) दरबारकी क्या आज्ञा है ? महाराना प्रताप हो या भाई जगमल ?

दरबारी—(चिल्लाकर) प्रताप ! प्रताप !!

एक दो आवाजें—जगमलसिंह।

जगमलसिंह—दरवार मुझे चाहता है।

प्रताप—मैं राना नहीं होऊंगा।

राजमाता—नहीं होगे।

प्रताप—नहीं, यह कठिन है।

राजमाता—मगर क्यो ?

प्रताप—लड़ाई छिड़ जायगी।

राजमाता—तो तू कायर है। मुझे स्वप्नमे भी आशा न थी कि तू तलवारकी चमक देखकर भयसे जा छिपेगा।

प्रताप—नहीं माता मैं कायर नहीं हूं मै मौतसे नहीं डरता मगर जरा सोचो, इस समय मेवाड़के पास वीर-पुत्रोका कितना अभाव है, मैं घरकी लड़ाईमे उन्हे और भी कम नहीं करना चाहता। जगमलसिह राना वन जाय, मैं सिपाहीकी तरह उसके कहनेपर अपनी जानतक देशपर निछावर कर दूंगा।

जगमलसिंह—वह खुद पीछे हटता है।

दरवारी—मगर हम हटने नहीं देंगे।

प्रताप—माता ! मुझे मजबूर न करो, मैं राज्य नहीं चाहता।

राजमाता—नहीं चाहते ? अगर इस अभागे प्रांतकी भूमि सोना उगलती, अगर इसके खेत लहलहा रहे होते, अगर इसके शहर आवाद होते, वाजार रौनकदार होता और महल आनन्द-विलासके प्रकाशसे जगमगाते होते, अगर इसपर दुश्मनोके आक्रमणका भय न होता, अगर इसके आकाशपर विनाशके वादल न घिरे होते, तो तुम्हारे मुंहसे ये शब्द कभी न निकलते। मगर आज यह अभागा है; तुम भी इसकी सेवासे जी चुराते हो, तुम आनेवाली विपत्तियोका हाल जानते हो। (लम्बी सास लेकर) वहुत खूब ! जाओ, मेवाड़की रक्षा न करो।

वह अपनी रक्षा आप कर लेगा। मगर याद रखो, सती तुम्हें शाप देती है, और यह शाप हर समय और हर स्थानमें तुम्हारे साथ रहेगा। पर्वतोंमें, शहरों और बयाबानोंमें····

प्रताप—आ भगवन् !

राजमाता—प्रताप आगे बढ़ ! मेवाड़ तुझे पुकार रहा है। नहीं तो—

प्रताप—खूब समझता हूं, कि सती मांका शाप मेरे इहलोक और परलोक दोनोको बिगाड़ देगा। मैं इस खयालसे कि मेरी वीर माता मरते समय मुझसे अप्रसन्न थीं, सारी आयुके लिये जीवनके आनन्दसे वंचित हो जाऊंगा। इस जन्ममें कुत्तेकी मौत मरूंगा और उस जन्ममें बुरी योनिमें उत्पन्न होऊंगा। मुझे सब स्वीकार है, परन्तु आज देशको वीर पुत्रोंकी आवश्यकता है, मै राज्य-प्राप्तिके लिये लहूकी एक भी बूंद बहानेको तैयार नहीं हो सकता।

जगमलसिंह—कैसी सच्ची माँ और कितना निःस्वार्थी बेटा। मैं तुम दोनोको प्रणाम करता हूं। मेवाड़की तुमपर सदा श्रद्धा रहेगी।

राजमाता—यह तुम कहते हो ?

जगमलसिंह—हां माता, यह मैं कहता हूं। आओ, प्रताप (आसनसे उतरकर) इस आसनपर तुम बैठो। मैं इसके योग्य नहीं हूं।

राजमाता—जगमल ! जगमल !!

जगमल—आओ भाई प्रताप, मै अपनी खुशीसे यह राजसिंहासन तुम्हारे सुपुर्द करता हूं।

प्रताप—भाई··

जगमल—नहीं, मै नहीं मानूंगा। यह उत्तरदायित्व तुम्हे स्वीकार करना होगा।

राजमाता—बेटा, तू धन्य है।

प्रताप—जिस राज्यके लिये खूनकी नदियां वह जाती हैं; भाई-भाईमें तलवार चल जाती है, सारी उम्रके लिये वैर हो जाता है, जिस राज्यको प्राप्त करनेके लिये लोग घोर पाप करनेको तैयार हो जाते हैं, उसी राज्यको तुमने मुट्ठीमे पाकर इस तरह छोड़ दिया, जैसे मिट्टीका तुच्छ ढेला हो। आज तुम कितने महान्, कैसे त्यागवीर मालूम होते हो।

राजमाता—भारतकी भावी सन्तान तुम दोनोंपर गर्व करेगी।

(प्रताप आसनपर बैठता है)

पुरोहित—प्रतापसिंह ! इस पवित्र अग्निकी ओर देखो।

प्रताप—देख रहा हूं, महाराज !

पुरोहित—अपनी तलवारको हाथ लगाओ।

(प्रताप तलवारको छूता है)

पुरोहित—कहो, कि मैं सच्चे राजपूतोंकी वीर सभामें प्रतिज्ञा करता हूँ।

प्रताप—मैं सच्चे राजपूतोंकी वीर-सभामें प्रतिज्ञा करता हूं।

राजमाता—(बात काटकर) जबतक मेवाड भूमि स्वाधीन नहीं हो जाती, जबतक इसका प्राचीन वैभव वापस नहीं आ जाता, जबतक इसके असहाय पुत्र अपना कर्त्तव्य और मन्तव्य पूर्णरूपसे नहीं समझ लेते, जबतक इसकी अबला पुत्रियोंको निर्भयतासे देशमें एक कोनेसे लेकर दूसरे कोनेतक चले जानेका साहस नहीं होता, तबतक महलमें आराम नहीं करोगे, थालमें खाना नहीं खाओगे, चारपाईपर पाँव नहीं धरोगे। कहो, यह प्रतिज्ञा करते हो ?

प्रताप—यह माँकी प्रतिज्ञा है, बेटा इसे जी-जानसे पूरी करेगा।

राजमाता—मगर यह प्रतिज्ञा बड़ी भयानक है।

प्रताप—माँका आशीर्वाद इसे आसान बना देगा।

राजमाता—प्रलोभन तुम्हारे मार्गमें जाल बिछावेंगे।

प्रताप—अपने पुत्रको ऐसा तुच्छ न समझिये। वह भीष्म-पितामहकी प्रतिज्ञाको ताजा कर दिखावेगा।

राजमाता—मेरा आशीर्वाद आजीवन तेरे साथ रहेगा।

(जानेको उद्यत होती है)

प्रताप—माँ.....

राजमाता—बस बेटे। अब मुझे न रोको तुम्हारे पिताजी अकेले घबरा रहे होंगे। मैं अभी सती होऊँगी। राज पुरोहित, आप अपना काम कीजिये।

(वेगसे प्रस्थान)

प्रताप—(चिल्लाकर) चली गई। माँ...माँ...

पुरोहित—संसारका यही नियम है। न कोई यहां रहा है न रहेगा। आदमी आता है, अपना खेल, खेल कर चला जाता है। धन्य वही है जो अपनी जननी जन्म भूमिके लिए कुछ काम कर जाता है। आपकी मांने अपनी लीला समाप्त कर दी, अब आप अपने कामकी ओर ध्यान दें।

(परदा बदलता है। राजमाता पतिकी लाशके साथ जलती दिखाई देती हैं। प्रताप दौड़ा हुआ आता है।)

प्रताप—माँ.....[कोई उत्तर नहीं मिलता। मां आगकी ज्वालामें छिप जाती है] बस चली गई। भगवन्! स्नेहकी ये दोनों नदियां सूख गईं। इनका स्थान कभी पूर्ण न होगा।

मन्त्री—महाराज! शांति धारण कीजिये। आपको रोना

शोभा नहीं देता। आप महाराना है। आपको अधीर देखकर प्रजाका क्या हाल होगा?

प्रताप— चौंककर, महाराना! क्या उसे रोनेकी भी आज्ञा नहीं। जो एक भिखारी भी कर सकता है, महाराना वह भी नहीं कर सकता? क्या यह शासन, यह राज्य इतना महँगा है? बहुत अच्छा! मैं अब न रोऊँगा, ये आँसू देश और जातिके हैं, इन्हे अपने लिए आँखोसे बाहर न निकलने दूँगा।

(मन्त्री, दरबारी सब सिर झुका देते है)

अभ्यास

(१) इस पाठको पढकर राजमाता और प्रतापसिंहके चरित्रपर अपना मत प्रकट करो।

(२) इस पाठकी कथाको सक्षेपमे एक लेखके रूपमे लिखो।

(३) राजमाताने किन-किन शब्दोसे प्रतापको प्रोत्साहित किया।

४१—कबीरके दोहे

[ले०—कबीरदास]

(कबीर पन्थके प्रवर्त्तक महात्मा कबीर-दासका जीवनकाल अनुमानतः स० १४५५—१५७५ है। ये हिन्दू कुलमें उत्पन्न हुए, परन्तु एक जुलाहे के घर पले। ये राम-नामके भक्त और स्वामी रामानन्दके शिष्य थे। हिंदू-मुसलमान दोनोंके मतोंकी इन्होंने बड़ी आलोचना की। इनके कहनेका ढङ्ग निराला है, परन्तु जो कुछ इन्होंने कहा है, अनुभवपूर्ण है। इनकी साखिया खूब मशहूर हैं।)

अर्व-खर्व लौं द्रव्य है, उदय अस्त लौं राज,
भक्ति-महातम ना तुलै, ये सब कौने काज॥ १॥

और कर्म सब कर्म हैं, भक्ति कर्म निष्कर्म,
कहै 'कबीर' पुकारि कै, भक्ति करो तजि भर्म ॥ २ ॥
लूटि सके तो लूटिये, सत्तनामकी लूटि,
पाछे फिर पछिताहुगे, प्राण जाहि जब छूटि ॥ ३ ॥
जिन ढूढ़ा तिन पाइयाँ, गहिरे पानी पैठि,
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि ॥ ४ ॥
मूरख सो क्या बोलिए, सठ सो कहा बसाय,
पाहनमें क्या मारिए, चोखा तीर नसाय ॥ ५ ॥
आचारी सब जग मिला, मिला विचारि न कोय,
कोटि अचारी वारिए, एक विचारि जो होय ॥ ६ ॥
निंदक एकौ मति मिलै, पापी मिलैं हजार,
इक निंदक के सीस पर, कोटि पापको भार ॥ ७ ॥
मद तो बहुतक भाँतिका, ताहि न जानै कोय,
तन-मद, मन-मद जाति-मद, माया-मद सबलोय ॥८॥
विद्या-मद औ गुनहु मद, राज-मद उनमद,
इतने मदको रद करै, तब पावै अनहद ॥ ९ ॥
नीचे-नीचे सब तरे, जेते बहुत अधीन,
चढ़िबोहित अभिमानकी, बूड़े ऊँच कुलीन ॥ १० ॥
सब ते लघुताई भली, लघुता से सब होय,
जस दुतियाको चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय ॥ ११ ॥
लम्बा मारग, दूरि घर, विकट पंथ बहु मार,
कह 'कबीर' कस पाइए, दुरलभ गुरु दीदार ॥ १२ ॥
करु बहियाँ बल आपनी, छाँड़ बिरानी आस,
जाँके आँगन है नदी, सो कस मरै पियास ॥ १३ ॥
रचनहारको चीन्हि ले, खाने को क्या रोय,
दिल मंदिरमे पैठि करि, तानि पिछौरा सोय ॥ १४ ॥

बुरा जो देखन मै चला, बुरा न मिलिया कोय,
जो दिल खोजूं आपनो, मुझसा बुरा न होय ॥ १५ ॥
काम, क्रोध, मद, लोभकी, जब लगि घटमें खान,
कहा मूर्ख, कह पंडिता, दोनों एक समान ॥ १६ ॥
'कबिरा' मन तौ एक है, भावै तहाँ लगाय,
भावै गुरुकी भक्ति कर, भावै विषय कमाय ॥ १७ ॥
मनके बहुतक रंग हैं, छिन-छिन बदलै सोय,
एकै रंगमे जो रहै, ऐसा बिरला कोय ॥ १८ ॥
मन सागर, मनसा लहरि, बूड़े—बहे अनेक,
कह कबीर ते बॉचि हैं, जिनके हृदय विवेक ॥ १९ ॥
मन गयन्द मानै नहीं, चलै सुरतिके साथ,
दीन महावत क्या करै, अंकुश नाहीं हाथ ॥ २० ॥
लघुता ते प्रभुता मिलै, प्रभुता ते प्रभु दूरि,
चींटी लै शक्कर चली, हाथीके सिर धूरि ॥ २१ ॥
प्रेम-प्रीति सों जो मिलै, तासो मिलिये धाय,
अन्तर राखे जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥ २२ ॥

अभ्यास

(१) प्रेम-प्रीति मिलै बलाय' इस पदका भावार्थ लिखो।
(२) 'मन ' बिरला कोय' इस पदका अन्वय और अर्थ लिखो।
(३) कबीरदासकी उक्तियोंमें अधिकतर क्या भाव भरा है ?
(४) साबित करो कि कबीरदास भावुक थे।
(५) निम्नलिखित पद्योका सरलार्थ लिखो:—

मद तो ·····सब लोय।

पिया मद ····अनहद।

(६) तन-मद, मन-मद, जाति-मदमें कौन समास है ?

———

शब्दार्थ-तालिका

१—याञ्चा

याञ्चा=याचना, भिक्षा। तमाल=एक बहुत ऊँचा सुन्दर सदाबहार वृक्ष, आबनूस। रसाल=आम। नय=नीत। अस्फुट=अधखिली। सुखाली=सुख देनेवाली। मराली=हंसिनी।

२—जातीय साहित्य

उल्लेख=वर्णन, चर्चा। व्यञ्जित=प्रकट। सुघनाम धन्य=यशस्वी। आध्यात्मिक=आत्मा आत्मा या ब्रह्म सम्बन्धी। परिमार्जित=शुद्ध, विमल। अवरोध=रुकावट, अड़चन।

३—कर्मवीर

मुँह तकते=निश्चेष्ट होकर बैठ रहना। लवर=ज्वाला, आगकी लपट। मरुभूमि=रेगिस्तान।

४—सम्भाषणमें शिष्टाचार

सम्भाषण=बातचीत, कथनोपकथन। शिष्टाचार=सभ्य-पुरुषोंके योग्य आचरण, आदर, सम्मान, विनय, नम्रता। व्यापक=विस्तृत। उपयोग=व्यवहार। समवयस्क=समान अवस्था या उम्रवाले। अहम्मन्यता=अहंकार, घमंड। दुराग्रह=हठ, जिद।

५—द्रौपदी-वचन-बाणावली

बाणावली=बाण+अवली=बाणोंकी पंक्ति, कठोर बाण रूपी तीखे वचन-समूह। कृष्णा=द्रौपदी। पैने=तेज। कुलजा=वंशमें उत्पन्न। गरिमा=महिमा। कोपानल=क्रोधरूपी आग। चर्चित=लगाया हुआ, लपेटा हुआ। अकृत्रिम=अलौकिक, असली। वल्कल=छिलका, छाल। युग्म=एक ही साथ जन्मा

हुआ। कृश=दुबला, क्षीण। सुमन-रज-कण=पराग। केतु=झंडा। निस्पृह=इच्छासे रहित, निर्लोभ।

६—स्वामी शंकराचार्य

विशारद=पंडित। मनोयोग=मनको एकाग्र कर किसी काममें लगाना। सौरभ=सुगन्ध। अतिवाहित=व्यतीत करना। रक्षणावेक्षण=पालन पोषण। स्रष्टा=रचयिता। अलीकता=दोष, त्रुटि। प्रणेता=रचयिता। अद्वैतवाद=वह सिद्धान्त जिसमें केवल एक ईश्वरकी सत्ता मानी जाय।

७—मातृ-भूमि

नीलाम्बर=आकाश। परिधान=वस्त्र। मेखला=करधनी। रत्नाकर=समुद्र। मंडन=शोभा, आभूषण। पयोद=बादल। जठरानल=पेटकी आग। प्रत्युपकार=उपकार बदला। घनावलि=बादल-समूह। वेणी=बालोंकी गुंथी हुई एक चोटी

८—फोनोग्राफका आविष्कार

. आविष्कार=किसी बातका पहले-पहल पता लगाना।

९—ज्ञान-स्रोत

स्रोत=झरना। अगाध पयोनिधि=अथाह समुद्र। जलयान=नाव, जहाज। अपान=दस या पाँच प्राणोंमेंसे एक। उदान='प्राणवायुका एक भेद। सन्यान=शरीरकी पंच-वायुओंमें से एक, जो सारे शरीरमें संचार करती है। ध्रुव-ध्येय=अटल लक्ष्य। अविकल्प—निश्चित। प्रमाद=पागलपन, घमंड। निगमागम=निगम+आगम=वेदशास्त्र। प्रगल्भ=प्रतिभाशाली। खरे=अधिक। दम्भ=कपट। प्रपंच=आडम्बर। प्रमाद=भ्रम। सुरा=मदिरा। मिस=बहानेसे। उपहास=निंदा, हँसी। मनोज विलास=काम क्रीड़ा। पटुता=निपुणता। प्रतिभा=ज्ञान। कृपाण=तलवार। अविरुद्ध=अनुकूल।

१०—मिट्टीका तेल

भूगर्भ=पृथ्वीका भीतरी हिस्सा। विस्तीर्ण=फैला हुआ। वाष्प=भाप। पूर्वोक्त=ऊपर कही हुई।

११—अंगद और रावण

मधुप=भौंरा। सारस=कमल। तमीचर=राक्षस। जनकात्मजा=सीताजी। नय-विशारद=नीतिज्ञ। शरद-चन्द्रिका=शरदऋतुके चन्द्रमाका प्रकाश। सपदि=शीघ्र। रमेश=विष्णु भगवान्। अनय=अनीति। रसा=पृथ्वी। सुरासुर=सुर-असुर=देवता और राक्षस। दनुजेश्वर=रावण। मनुज-सेवक=मनुष्यका नौकर। स्तवन=प्रशंसा। नृपात्मज=राजकुमार। समर-पावक=युद्धरूपी अग्नि। तिरोहित=गायब हो जाना, नष्ट होना। रोहित=इन्द्रधनुष। कवल दायक=भोजन देनेवाला। वारण=हाथी।

१२—भारतीय संस्कृति

संस्कृति=शाइस्तगी, किसी जातिकी मानसिक शुद्धि। सभ्यता=शारीरिक शुद्धि। भौतिक=शरीर सम्बन्धी। आदर्श=नमूना। तद्विषयक=उस विषयके सम्बन्धमें। निरीक्षण=जाँच-पड़ताल। वैभवशाली=प्रतापी। वृत्ति=जीविका, वसीला। अधिपति=स्वामी। वृहत्=बड़ा। अतीतकाल=भूतकाल। साधन=जरिया। उपासना=पूजा। ध्येय=ध्यान रखने योग्य लक्ष्य। उद्देश्य=मतलब। आध्यात्मिक=आत्म-सम्बन्धी। अवहेलना=तिरस्कार, बेपरवाही करना। विलासिता=आराम-तलबी। कुत्सित=नीच, अधम। द्वन्द्व=झगड़ा। शैशव=बचपन पुनरुत्थान=फिरसे उन्नति। सम्पर्क=लगाव, सम्बन्ध।

१३—छवि

मंजुल=सुन्दर। मयङ्क=चन्द्रमा। आनन=मुख। कांति=ज्योति। दृग=नेत्र। प्रभाकर=सूर्य। शरद जुन्हाई=शरद-कालकी चाँदनी। छबि=सुन्दरता,शोभा। सलोनी=सुन्दर। रति=काम-

देवकी स्त्री। रमा=लक्ष्मी। कनकलता=स्वर्णवेलि। कमनीयता=सुन्दरता। सुघर=सुन्दर। सुषमा=शोभा। सुधाकर=चन्द्रमा। मिलिंद=भँवरा। पतंग=कीड़ा। कंजकलिका=कमलकी कली। निकाई=सुन्दरता। लुनाई=सुन्दरता। कृशानु=अग्नि। पादप=वृक्ष। सरोज=कमल। सुमन=फूल। विहंगमों=पक्षियों।

१४—गोविन्द

प्रेम-विमोर=प्रेमासक्त। अनल-अनिल=आग और हवा। अनुमति=आज्ञा। अहै=है। प्रत्यादेश=आज्ञा, हुक्म।

१५—भक्तकी भावना

गगन=आसमान। क्षुद्र=छोटा। महानद=समुद्र। ऋतुराज=वसंत। आधेय=रखने योग्य। करुणेश=दयाका स्वामी। शीतकर=चन्द्रमा। शरद राका शशि=शरद कालकी पूर्णिमाका चन्द्रमा। हृदयेश=हृदयका स्वामी। तृषित=प्यासा। दिवाकर=सूर्य। जलद=बादल।

१६—हिन्दी साहित्यमें नाटक

ग्रस लेगा=पकड़ लेगा। उदीयमान=प्रतिभाशाली। सुरम्य=सुन्दर। वाद्यों=बाजे। चित्ताकर्षक=मनको खींचनेवाली। प्रवीण=निपुण।

१७—भ्रातृप्रेम

सुकृत=पुण्य। सिरान=खतम हो गया। गेह=घर। नयनागर=नीतिमें चतुर। कदराना=डरना। सिख=शिक्षा, उपदेश। नतरु=नहीं तो। रिपुसूदन=शत्रुघ्न। तुहिन=पाला। दिवस=दिन। वादि=व्यर्थ। सुपासु=आराम।

वशिष्ठ और भरतका संवाद

रोपू=क्रोध। मुखर=बहुत बोलनेवाला। आयसु=आज्ञा। अनुसरई=अनुसरण करते हैं। वैखानस=तपस्वी। पिसुन=चुगलखोर। बैन=वचन। नरेश=राजा। फुर=सत्य। परिह-

रहु=छोड़ दो। अमिय=अमृत। सचिव=मंत्री। परितोष=सन्तोष। जरनि=जलन। सदन=घर।

१८—क्रोध

साक्षात्कार=भेंट; सुस्पष्टज्ञान। परिज्ञान=जानकारी, ज्ञान। अभ्यस्त=परिचित। अवरोध-शक्ति=निवारण करनेकी शक्ति। विकारो=चिह्नो, परिवर्तन। सृष्टिविधान=संसारिक व्यवस्था। आर्त=दु:ख। अर्थ परायण=धनका लोभी।

१९—प्रेम-प्रवाह

प्रासाद=महल। समता=बराबरी। सर्वेस=ईश्वर। बराह=सूअररूपी भगवान्। हृन्निर्झर=हृदयरूपी झरना। समीरण=हवा। दाह=जलन। विपद्वज्र=दुखरूपी वज्र।

२०—कबीर साहब

प्रवर्तक=चलानेवाला, नेता। गियाना=ज्ञान। सत्यान्वेषक=सत्यकी छानबीन करनेवाला।

२१—सज्जन-संकीर्तन

नीर-निधि=समुद्र। निस्तब्धता=शान्ति। संकीर्त्तन=वन्दना। झंझानिल=तेज वायु, प्रलयकारी हवा। प्रेमरासि=प्रेमका समूह। केतु=पताका। अरुण=लाल।

२२—चरित्र संगठन

दार्शनिक बुद्धि=दर्शनको ग्रहण करनेवाली बुद्धि। आत्मा=परमात्मा संबंधी ज्ञान। वैज्ञानिक-कौशल=विज्ञान सम्बन्धी चातुर्य। प्रौढ़ावस्था=युवावस्था। उत्तरदायित्व=जिम्मेदारी, कार्यभार। नीरस-पिष्ट पेषण=एक नीरस बातको बार-बार कहना। कण्टकाकीर्ण=कठिनाइयोंसे भरा हुआ।

२३—संसार-सार

मिथ्याभास=झूठा, जिसका कुछ अस्तित्व न हो। भव-भय=संसारिक दु:ख।

२४—ग्रामवास और नगरवास

परम्पराओं=एकके पीछे दूसरा; लगातार। ओत प्रोत=मिलता-जुलता, घुल-मिलकर। अभिनय=नाटक। प्रहसन=हास्यरससे पूर्ण एक प्रकारका नाटक। धारोष्ण=थनसे तुरत दुहा हुआ दूध।

२५—मुरझाया हुआ फूल

शुष्क=सूखा हुआ। करतार=ईश्वर। हरखानां=प्रसन्न होना। सुमन=फूल।

२६—सर्वगुणाधार श्रीकृष्ण

कार्य-कलाप=कार्य समूह। पराकाष्ठा=अन्तिम सीमा। अश्व परिचय=घोड़े का काम। चिकित्सा=इलाज। सुरापायी=शराबी। निरपेक्ष=निर्द्वन्द्व, उदासीन।

२७—भारत-वन्दना

अलका=कुबेरकी पुरी। अमरावती=इन्द्रपुरी। निरत=लीन। विनसी=नष्ट होना। सकानी=डरी हुई।

२८—वीरता

आविर्भाव=उत्पत्ति। प्रीतिभाजन=प्रिय-पात्र। अस्थियों=हड्डियों।

२९—विपद् स्वागत

आलिङ्गन=गले लगाना। प्रस्तुत=तैयार।

३०—मत्स्य-देशमें पाण्डव

काल क्षेप=समय बिताना। अनिष्ट=अमङ्गल। बुद्धि-विलक्षणता=बुद्धिमानी। उपयुक्त=योग्य। पाकशाला=रसोई घर। द्यूत क्रीड़ा=जूएका खेल। प्रख्यात्=प्रसिद्ध। निरीक्षण=देखभाल।

३१—वीर शिवाजी

छिन-छिन=क्षण-क्षण। पद-रज=पैरकी धूल।

३२—चरितावली (कालिदास)

साक्षात्कार = भेंट। विद्योपार्जन = विद्या कमाना। देशाधिपति = देशके राजा।

३३—गिरिधरकी कुंडलिया

बिछोहा = वियोग। अगर = एक सुगंधित लकड़ी। कुलहा = कपड़ेकी टोपी। हौआ = डरावना या भयंकर कल्पित जीव।

३४—वीर-जननी-राजस्थान

कारनामो = कामो। शहीद = जो देशके लिये मरा हो। जिगर = कलेजा। प्रत्युत् = बल्कि। प्रसव = पैदा करना।

३५—सूरदासके पद

भुजंग = साँप। चुगाये = दाना खिलाना। स्वान = कुत्ता। सरिता = नदी। खहि = राख-पात। पाहन = पत्थर। रीति = खाली। निखंग = तरकस। जावक = महावर। बेनी = चोटी। जोवत = खोजती है। आनन = मुंह।

३६—कंस प्रवंचना

परतीत = विश्वास। बसीठ = दूत।

३७—रहीमके दोहे

मीत = मित्र। नखत = नक्षत्र, तारे। बड़री = बड़ी। ब्याल = साँप।

३८—चित्तौड़-चर्चा

विस्मृत = भूलना। मरुभूमि = रेगिस्तान। प्राचीर = चहार-दीवारी। दिल्लीश्वर = दिल्लीके राजा। विजयस्तम्भ = जीतका खम्भा। जीर्ण-शीर्ण = पुराना।

३९—भूषण कविके पद्य

गजेन्द्र = ऐरावत। दुग्ध-नदीस = क्षीर सागर। रजनीस = चन्द्रमा। कमठ = कछुआ। दिगम्बर = शंकरजी। सिवा = पार्वती।

———